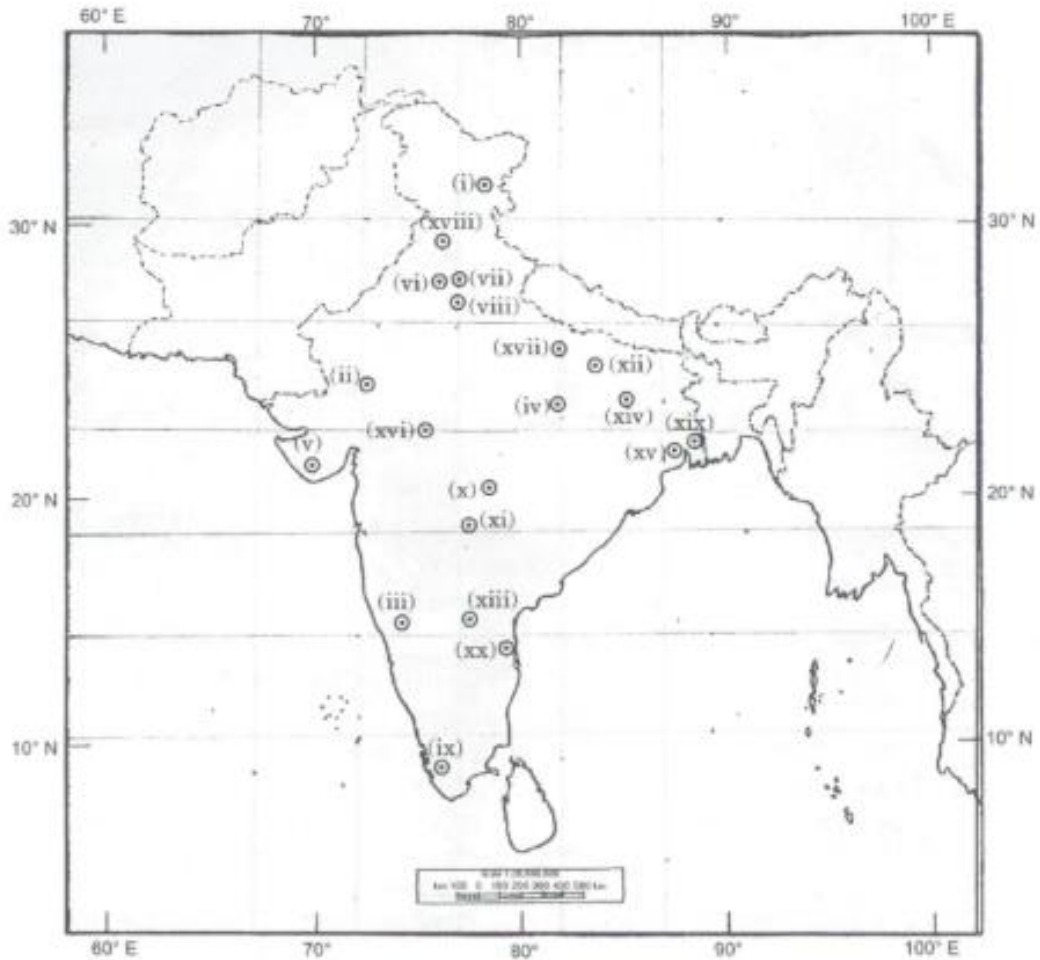


## Model Answer History Optional Paper 1 - 2025

### SECTION A

**Q.1** आपको दिए गए मानचित्र पर अंकित निम्नलिखित स्थानों की पहचान कीजिए एवं अपनी प्रश्न-सह-उत्तर पुस्तिका में उनमें से प्रत्येक पर लगभग 30 शब्दों की संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। मानचित्र पर अंकित प्रत्येक स्थान के लिए स्थान निर्धारण संकेत क्रमानुसार नीचे दिए गए हैं :

**Identify the following places marked on the map supplied to you and write a short note of about 30 words on each of them in your Question-cum-Answer Booklet. Locational hints for each of the places marked on the map are given below seriatim :**



### **नवपाषाणिक स्थल (Neolithic Sites)**

नवपाषाण काल (Neolithic Age) मानव सभ्यता के विकास का वह चरण था जब मनुष्य ने शिकार और संग्रहण की जीवनशैली छोड़कर कृषि, पशुपालन और स्थायी निवास का आरंभ किया। यह काल लगभग 7000 ई.पू. से 1000 ई.पू. तक माना जाता है।

**कश्मीर घाटी**

### 1. बुरज़ाहोम (Burzahom)

- श्रीनगर के पास स्थित।
- यहाँ गर्तवास(Pit dwellings) मिले हैं।
- कुत्ते के साथ मनुष्य को दफनाने के प्रमाण।
- शिकार, मछली पकड़ना, और कृषि के प्रमाण।

### 2. मध्यपाषाणिक स्थल (Mesolithic Sites)

मध्यपाषाण काल या Mesolithic Age वह काल था जो पुरापाषाण (Palaeolithic) और नवपाषाण (Neolithic) काल के बीच का संक्रमण काल माना जाता है।

भारत में इसका समय लगभग 10,000 ई.पू. से 6000 ई.पू. तक माना जाता है।

#### राजस्थान

##### बागोर (भीलवाड़ा)

- बनास नदी के किनारे।
- पशुपालन और कृषि के आरंभिक प्रमाण।
- झोपड़ीनुमा आवास के अवशेष।

##### तिलवारा (जैसलमेर के पास)

- लूणी नदी के किनारे।
- सूक्ष्म औज़ार और पशुओं की हड्डियाँ मिलीं।

### 3. पुरापाषाणिक स्थल (Palaeolithic Sites)

पुरापाषाण काल (Palaeolithic Age) मानव इतिहास का सबसे प्रारंभिक चरण है। यह काल लगभग 20 लाख वर्ष पूर्व से लेकर 10,000 ई.पू. तक माना जाता है।

#### हुनसगी, बैरनसूर, कुरनूल (कर्नाटक) –

- बड़ी संख्या में पत्थर के औज़ार।
- गुफाओं में निवास के प्रमाण।

### 4. प्रस्तर कलाकृति युक्त नवपाषाणिक स्थल (Neolithic Sites with Rock Art in India)

भारत में कुछ नवपाषाणिक स्थलों पर शैलचित्र (Rock Paintings / Rock Art) पाए गए हैं – जो उस समय के मनुष्य के जीवन, आस्था और पर्यावरण की झलक प्रस्तुत करते हैं। इन चित्रों में जानवरों का शिकार, नृत्य, कृषि, घरेलू जीवन आदि के दृश्य मिलते हैं।

#### आदमगढ़ शैलाश्रय

मध्य प्रदेश

- शिकार के दृश्य और सामाजिक जीवन के चित्र।
- कुछ चित्र नवपाषाण काल से सम्बद्ध माने गए हैं।

5. सिंधु घाटी सभ्यता (Indus Valley Civilization) भारतीय उपमहाद्वीप की एक प्राचीन नगरीय सभ्यता थी, जो लगभग 3300 ई.पू. से 1300 ई.पू. के बीच विकसित हुई। इसे हड़प्पा सभ्यता (Harappan Civilization) भी कहा जाता है, क्योंकि इसका पहला खोजा गया स्थल हड़प्पा था। यह सभ्यता मुख्यतः आज के पाकिस्तान और उत्तर-पश्चिमी भारत के क्षेत्र में फैली हुई थी।

### लोथल (Lothal)

गुजरात, भारत

यहाँ से प्राचीन गोदीवाड़ा (dockyard) मिला है – यह सभ्यता का एक प्रमुख व्यापारिक बंदरगाह था।

6. अग्निकुण्ड युक्त प्रारंभिक हड़प्पीय स्थल – कालीबंगा (Kalibangan) है

अग्निकुण्ड (Fire Altars):

- यहाँ से एक पंक्ति में आयताकार अग्निकुण्ड मिले हैं।
- ये अग्निकुण्ड धार्मिक या यज्ञ संबंधी अनुष्ठानों के लिए प्रयोग में लाए जाते थे।
- यह कालीबंगा को अन्य हड़प्पा स्थलों से अलग बनाता है।

7. उत्तर हड़प्पा काल या उत्तर हड़प्पीय काल (Late Harappan Phase) हड़प्पा सभ्यता का अंतिम चरण था, जो लगभग 1900 ई.पू. से 1300 ई.पू. तक रहा।

आलमगीरपुर (Alamgirpur)	मेरठ, उत्तर प्रदेश	यह हड़प्पा सभ्यता का सबसे पूर्वी स्थल है; यहाँ उत्तर हड़प्पा काल के बर्तन और ईंटें प्राप्त हुआ है।
9 हुलास (Hulas)	सहारनपुर, उत्तर प्रदेश	उत्तर हड़प्पा बस्ती; यहाँ से पशुपालन और कृषि के प्रमाण मिले हैं।

8. गेरुए रंग के मृद्भांड (OCP) संस्कृति के स्थल गंगा-यमुना दोआब में पाए जाते हैं। यह उत्तर हड़प्पा काल की संस्कृति है, जिसमें लाल रंग के मृद्भांड, ताम्र औज़ार और कृषिपरक जीवन के प्रमाण मिलते हैं।

(Uttar Pradesh) अतरंजीखेड़ा एटा

हस्तिनापुर उत्तर प्रदेश

9. मध्यपाषाणिक स्थल लगभग 10,000 ई.पू. से 4000 ई.पू. के बीच के हैं। इन स्थलों पर सूक्ष्म उपकरण (microliths), शिकार, मत्स्य पालन तथा प्रारंभिक कृषिजीवन के प्रमाण मिलते हैं।

10. महापाषाणिक स्थल लौह युग से संबंधित हैं। इनमें बड़े पत्थरों से निर्मित समाधियाँ, लौह औज़ार, मिट्टी के बर्तन तथा मृतक अवशेष पाए गए। दक्षिण भारत में इनका विशेष प्रसार था।

Amravati (आंध्र प्रदेश) – महापाषाण समाधियाँ और लौह युगीन वस्तुएँ।

11. दक्षिण भारत में प्रमुख महाजनपद “अश्मक (Assaka या Asmaka)” था। यह गोदावरी नदी के तट पर स्थित था। इसकी राजधानी **पोतलि (Potali)** मानी जाती है। यह व्यापार और कृषि से समृद्ध क्षेत्र था।

#### विस्तृत जानकारी:

- **नाम:** अश्मक (Assaka या Asmaka)
- **स्थान:** गोदावरी नदी घाटी, वर्तमान महाराष्ट्र-तेलंगाना क्षेत्र
- **राजधानी:** पोतलि या पोटलि (Potali)

#### विशेषता:

- यह 16 महाजनपदों में एकमात्र दक्षिण भारत का महाजनपद था।
- यह प्राचीन भारत के राजनीतिक और आर्थिक केंद्रों में से एक था।
- बौद्ध ग्रंथों जैसे *अंगुत्तर निकाय* में इसका उल्लेख मिलता है।

अश्मक दक्षिण भारत का एकमात्र महाजनपद था। यह गोदावरी नदी के तट पर स्थित था, जिसकी राजधानी पोतलि थी। यह व्यापार, कृषि और लौह धातु उद्योग का प्रमुख केंद्र था।

12. गौतम बुद्ध का महापरिनिर्वाण कुशीनगर में हुआ था। यहाँ उन्होंने 483 ई.पू. के लगभग देह त्याग किया। यह बौद्ध तीर्थों में से एक प्रमुख स्थल है।

यह चार प्रमुख बौद्ध तीर्थों में से एक है — लुंबिनी (जन्म), बोधगया (ज्ञान), सारनाथ (धर्मचक्र प्रवर्तन), कुशीनगर (महापरिनिर्वाण)।

यहाँ एक विशाल महापरिनिर्वाण स्तूप और लेटे हुए मुद्रा में बुद्ध की मूर्ति स्थित है।

13. अशोक के प्रमुख शिलालेख (Major Rock Edicts of Ashoka) भारत के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत हैं। ये शिलालेख अशोक (मौर्य वंश के सम्राट, शासनकाल लगभग 273-232 ई.पू.) द्वारा अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों में पत्थरों और स्तंभों पर खुदवाए गए थे। इनका उद्देश्य धर्म नीति (Dhamma) का प्रचार करना था।

#### अशोक के प्रमुख शिलालेख (Major Rock Edicts)

अशोक के कुल 14 प्रमुख शिलालेख माने जाते हैं। ये विभिन्न स्थानों पर पाए गए हैं — जैसे कि गिरीनार (गुजरात), शाबाजगढ़ी (पाकिस्तान), मानसेहरा, खालसी, सोपारा (महाराष्ट्र), एरंगुडी (आंध्र प्रदेश), जग्गयपेट, आदि।

अधिकांश शिलालेख प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि में हैं।

उत्तर-पश्चिम भारत में (शाबाजगढ़ी, मानसेहरा) ये खरोष्ठी लिपि में हैं।

कुछ यूनानी और अरामी (ग्रीक और अरामाइक) भाषा के अभिलेख भी अफगानिस्तान क्षेत्र में मिले हैं।

14. अशोक के लघु शिलालेख (Minor Rock Edicts of Ashoka) भी उसके शासनकाल के अत्यंत महत्वपूर्ण अभिलेख हैं। इनसे हमें अशोक के व्यक्तिगत जीवन, धर्म परिवर्तन, और धर्म प्रचार की नीति के बारे में जानकारी मिलती है।

लघु शिलालेख की संख्या लगभग 15 से अधिक है।

ये प्रमुख शिलालेखों की तुलना में आकार में छोटे, परन्तु व्यक्तिगत और आत्मस्वीकृतिपूर्ण हैं।

इनका उद्देश्य था — सम्राट की धर्म भावना, व्यक्तिगत आचरण और प्रजा को धर्म पालन का उपदेश देना।

15. **मौर्य काल (Mauryan Period)** में भारत का व्यापार (आंतरिक और बाह्य दोनों) अत्यंत उन्नत था। मौर्य शासन (लगभग 321 ई.पू. – 185 ई.पू.) के दौरान **व्यापारिक केंद्र (Trade Centres)** पूरे उपमहाद्वीप में फैले हुए थे, जिनसे न केवल आर्थिक समृद्धि हुई बल्कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी हुआ।

पटलिपुत्र

(आधुनिक पटना, बिहार)

मौर्य साम्राज्य की राजधानी; प्रशासन और व्यापार का मुख्य केंद्र; गंगा नदी के माध्यम से जल-व्यापार का प्रमुख मार्ग।

16. शक (Shaka) और कुषाण (Kushan) राजवंश क्रमशः **प्रथम शताब्दी ई.पू. से तृतीय शताब्दी ईस्वी** तक भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में शासन करते थे।

इन दोनों वंशों ने **सिक्का प्रचलन (Coinage System)** को अत्यधिक विकसित किया। इनके सिक्के (**Hoard**) भारत के कई हिस्सों से प्राप्त हुआ है — जो इस बात का प्रमाण है कि उस समय **मुद्रा-आधारित अर्थव्यवस्था** का व्यापक प्रचलन था।

17. **अश्वमेध यज्ञ (Ashvamedha Yajna)** एक प्राचीन वैदिक राजसूय अनुष्ठान था, जो सम्राट की सार्वभौमिक सत्ता (साम्राज्य शक्ति) को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता था।

ऐतिहासिक रूप से कई राजाओं ने इसका उल्लेख अपने **अभिलेखों (inscriptions)** में किया है।

**अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति (इलाहाबाद स्तंभ अभिलेख)** में मिलता है, जिसे **हरिषेण** ने लिखा था।

इसमें समुद्रगुप्त के द्वारा किए गए **अश्वमेध यज्ञ** का विस्तृत वर्णन किया गया है।

18. **मौर्योत्तर कालीन पकी ईंटों का गृह-स्थल** (House site made of baked bricks of Post-Mauryan period) भारतीय पुरातत्व में एक महत्वपूर्ण विषय है, क्योंकि यह उस युग के **नगर नियोजन, आवास निर्माण और शहरी जीवन** की जानकारी देता है।

कौशांबी

उत्तर प्रदेश

यहाँ से मौर्योत्तर काल के **पकी ईंटों से बने घरों के अवशेष** मिले हैं; दीवारें सुगठित और कमरों का विभाजन स्पष्ट।

19. **मौर्योत्तर कालीन टेराकोटा शिल्प** भारत की प्राचीन कला का एक अत्यंत समृद्ध और विकसित रूप था।

मौर्य साम्राज्य के पतन (लगभग 200 ई.पू.) के बाद जो शुंग, काण्व, सातवाहन, शक और कुषाण काल आया — उस समय टेराकोटा (मृत्तिका कला) का असाधारण विकास हुआ।

ताम्रलिप्ति (तामलुक)

पश्चिम बंगाल

समुद्री व्यापारिक नगर — यहाँ देवी प्रतिमाएँ और नृत्यांगनाओं की टेराकोटा मूर्तियाँ मिली हैं।

20. **पल्लव काल (Pallava Period)** — लगभग 6वीं से 9वीं शताब्दी ईस्वी — दक्षिण भारत के इतिहास में एक अत्यंत समृद्ध युग था।

पल्लवों का साम्राज्य मुख्यतः **कांचीपुरम (तमिलनाडु)** केंद्रित था, और उन्होंने समुद्री व्यापार को बहुत प्रोत्साहन दिया।

इस काल में कई **महत्वपूर्ण बंदरगाह (Ports)** विकसित हुए, जिनसे दक्षिण-पूर्व एशिया, श्रीलंका, चीन और रोम तक व्यापार होता था।

<b>महाबलीपुरम (ममल्लपुरम)</b>	तमिलनाडु (चेन्नई से दक्षिण में, बंगाल की खाड़ी तट पर)	पल्लवों का सबसे प्रसिद्ध बंदरगाह। राजा <b>नरसिंहवर्मन प्रथम (ममल्ल)</b> के नाम पर इसका नाम पड़ा। यहाँ से <b>श्रीलंका, सुमात्रा, जावा और बाली</b> तक व्यापार होता था। साथ ही यह कला और स्थापत्य का भी केंद्र था।	
2.	<b>नागपट्टनम</b>	तमिलनाडु (कावेरी डेल्टा क्षेत्र)	यह बंदरगाह पल्लव काल से लेकर चोल काल तक सक्रिय रहा। यहाँ से <b>चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया</b> के देशों से व्यापारिक संपर्क थे।
3.	<b>मायलापुर</b>	वर्तमान चेन्नई (तमिलनाडु)	पल्लवों के समय एक प्राचीन व्यापारिक बंदरगाह; यहाँ से मोती, कपड़ा, और मसाले निर्यात होते थे। यूनानी और रोमन व्यापारी भी यहाँ आते थे।
4.	<b>कडालूर / उदयेंड्रम तट क्षेत्र</b>	तमिलनाडु	तटीय व्यापार के लिए उपयोगी छोटा बंदरगाह, जिससे स्थानीय और विदेशी व्यापार होता था।
5.	<b>पुलिकट (Pulicat)</b>	तमिलनाडु-आंध्र प्रदेश तट पर	उत्तरी दिशा में स्थित पल्लवों का बंदरगाह, जो बाद में मध्यकाल में भी व्यापारिक रूप से प्रसिद्ध

Q.2.

(a) ताम्रपाषाणिक संस्कृति, जो नवपाषाण काल के बाद और कांस्य युग से पहले की संक्रमणकालीन अवस्था थी, की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इस काल के लोग **तांबे और पत्थर दोनों के उपकरणों का एक साथ उपयोग** करते थे। यह कथन कि वे "लघुपाषाणिक उपकरण में विशेषज्ञ थे।

लघुपाषाणिक उपकरणों में विशेषज्ञता

ताम्रपाषाणिक संस्कृतियों में पत्थर के छोटे औजारों, जिन्हें माइक्रोलिथ्स (Microliths) या लघुपाषाणिक उपकरण कहा जाता है, का व्यापक उपयोग जारी रहा।

- **निरंतरता और विशेषज्ञता:** हालांकि तांबे का परिचय हो चुका था, लेकिन पत्थर के उपकरण अभी भी आम जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा थे। इस काल के कारीगर ब्लेड, स्क्रेपर, बरिन (burin), और नुकीले औजारों जैसे छोटे, ज्यामितीय रूप से सटीक पत्थर के औजार बनाने में विशेषज्ञ थे।
- **दैनिक उपयोग:** तांबे की उपलब्धता सीमित थी और यह महंगा भी था। इसलिए, दैनिक कार्यों जैसे शिकार, कटाई (दरांती में लगे ब्लेड के रूप में), खाल उतारने और अन्य घरेलू कार्यों के लिए मुख्य रूप से इन्हीं लघुपाषाणिक उपकरणों का उपयोग किया जाता था।
- **कुशल निर्माण तकनीक:** इन औजारों को बनाने के लिए उच्च स्तर की कारीगरी और विशेषज्ञता की आवश्यकता होती थी, जो दर्शाता है कि पत्थर के काम की तकनीक अभी भी प्रासंगिक थी और उसमें विशेषज्ञता हासिल थी।

प्रस्तर कार्य (पत्थर के काम) के कुशल कारीगर

"प्रस्तर कार्य के कुशल कारीगर" होने का अर्थ केवल माइक्रोलिथ्स बनाने तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें अन्य प्रकार के पत्थर के औजारों और वस्तुओं का निर्माण भी शामिल था:

- **विभिन्न प्रकार के औजार:** लघुपाषाणिक औजारों के अलावा, इस काल में कुल्हाड़ियों, छेनी, और पीसने वाले पत्थरों (सिलबट्टा) जैसे बड़े पत्थर के औजारों का भी उपयोग होता था।
- **स्थानीय सामग्री का उपयोग:** कारीगर स्थानीय रूप से उपलब्ध चर्ट, कैल्सेडनी, एगेट और क्वार्ट्ज जैसी सामग्रियों का प्रभावी ढंग से उपयोग करते थे। विभिन्न क्षेत्रों में पत्थर के औजारों के प्रकारों में भिन्नता स्थानीय उपलब्धता और आवश्यकताओं को दर्शाती है।
- **तांबे के साथ सह-अस्तित्व:** सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह कुशलता तांबे के औजारों के साथ सह-अस्तित्व में थी। तांबे का उपयोग मुख्य रूप से विशिष्ट वस्तुओं जैसे मछली पकड़ने के कांटों, कुल्हाड़ियों और आभूषणों के लिए किया जाता था, जबकि अधिकांश रोजमर्रा के कार्य पत्थर के औजारों से ही होते थे।

### निष्कर्ष

ताम्रपाषाणिक संस्कृति तकनीकी रूप से एक संक्रमणकालीन चरण था। इस काल के लोगों ने धातु विज्ञान की शुरुआत की, लेकिन उन्होंने नवपाषाण काल की पत्थर की तकनीकों को छोड़ा नहीं। इसके विपरीत, उन्होंने लघुपाषाणिक उपकरणों और अन्य प्रस्तर कार्यों में अपनी विशेषज्ञता बनाए रखी। यह दोहरी विशेषज्ञता उनकी अनुकूलनशीलता और उस समय की आर्थिक व तकनीकी आवश्यकताओं को दर्शाती है।

(b) हड़प्पावासी कलाप्रेमी लोग नहीं थे" - यह विवादास्पद है। हालांकि हड़प्पा कला में मिस्र या मेसोपोटामिया जैसी भव्य और विशालकाय स्मारक वास्तुकला या मंदिर नहीं मिलते हैं, लेकिन पुरातत्वविदों द्वारा खोजी गई विभिन्न कलाकृतियाँ और शिल्प इस बात का स्पष्ट प्रमाण देते हैं कि हड़प्पावासी उच्च स्तर के कलात्मक कौशल और सौंदर्य बोध रखते थे।

इस कथन पर टिप्पणी करते हुए, हम निम्नलिखित बिंदुओं से इसका खंडन कर सकते हैं:

कलात्मकता के प्रमाण

हड़प्पा सभ्यता से प्राप्त अवशेषों में कला और शिल्प के प्रति उनके प्रेम और कौशल के कई प्रमाण मिलते हैं:

● **मूर्तियाँ और प्रतिमाएँ:**

- "नर्तकी" की कांस्य प्रतिमा: मोहनजोदड़ो से मिली यह प्रतिमा हड़प्पावासियों के धातु विज्ञान के ज्ञान और कलात्मक अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें गतिशीलता और जीवंतता स्पष्ट रूप से झलकती है।
- "पुरोहित राजा" की पत्थर की मूर्ति: यह मूर्ति, हालांकि छोटी है, लेकिन इसमें चेहरे की विशेषताओं, दाढ़ी के विवरण और अलंकृत वस्त्रों के चित्रण में यथार्थवाद और बारीकी देखी जा सकती है।

● **मोहरें (Seals):**

- हजारों की संख्या में मिली मोहरें (अधिकांश सेलखड़ी से बनी) हड़प्पा कला का एक महत्वपूर्ण पहलू हैं। इन पर जानवरों (जैसे बैल, एक-सींग वाला जानवर, हाथी, बाघ) का यथार्थवादी और कलात्मक चित्रण उनके कौशल को दर्शाता है।
- इन मोहरों पर लिपि के साथ-साथ जानवरों की आकृतियों की सटीकता और सौंदर्यपूर्ण संतुलन कला के प्रति उनके प्रेम को सिद्ध करता है।

● **मिट्टी के बर्तन (Pottery):**

- हड़प्पा के मिट्टी के बर्तन अपनी गुणवत्ता और डिजाइन के लिए जाने जाते हैं। लाल और काले रंग के बर्तनों पर ज्यामितीय पैटर्न, पशु-पक्षियों के चित्र और पेड़-पौधों की आकृतियाँ बनाई जाती थीं। इन बर्तनों का उपयोगितावादी होने के साथ-साथ सौंदर्यवादी मूल्य भी था।

● **आभूषण और मनके:**

- पुरुष और महिलाएँ दोनों आभूषण पहनते थे। सोने, चांदी, कीमती पत्थरों (जैसे कार्नेलियन, लाजवर्दी) और हाथी दांत से बने मनके, हार, कंगन और झुमके उत्कृष्ट कारीगरी का प्रदर्शन करते हैं। चन्हूदड़ो जैसी जगहों पर मनका बनाने के कारखाने मिले हैं, जो इस शिल्प के प्रति उनकी विशेषज्ञता को दर्शाते हैं।

● **टेराकोटा की आकृतियाँ:**

- मिली हुई मिट्टी की छोटी मूर्तियाँ, जिनमें मातृ देवी की आकृतियाँ और खिलौने शामिल हैं, भी उनकी कलात्मक अभिरुचि को दर्शाती हैं।

**निष्कर्ष**

यह कहना गलत होगा कि हड़प्पावासी कलाप्रेमी नहीं थे। उनकी कला में भव्यता या विशालता की कमी हो सकती है, लेकिन उनकी कलाकृतियों में **सूक्ष्मता, यथार्थवाद, बारीकी और उपयोगिता के साथ सौंदर्यशास्त्र का अद्भुत संयोजन** मिलता है। मोहरों पर जानवरों का चित्रण, "नर्तकी" की मूर्ति की जीवंतता, और आभूषणों की कारीगरी स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि हड़प्पा सभ्यता के लोगों में कलात्मक

चेतना और सौंदर्य बोध कूट-कूट कर भरा था। उनकी कलाकृतियाँ उनकी समृद्ध सांस्कृतिक और कलात्मक विरासत का प्रमाण हैं।

(c) छठी शताब्दी ईसा पूर्व में जैन धर्म और बौद्ध धर्म का उदय केवल एक धार्मिक घटना नहीं था, बल्कि यह पूर्वी भारत में हो रहे गहरे सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों, विशेषकर **कृषि-आधारित बस्तियों के विस्तार और नई अर्थव्यवस्था के विकास**, के प्रति एक वैचारिक प्रतिक्रिया थी। ये परिवर्तन तत्कालीन स्थापित वैदिक धर्म के लिए एक गंभीर चुनौती बन गए थे।

पूर्वी भारत में कृषि विस्तार और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन

पूर्वी भारत (मगध, कोसल, आदि) में इस काल में दो मुख्य परिवर्तन हुए:

1. **लोहे का व्यापक उपयोग:** लोहे के औजारों, विशेषकर कुल्हाड़ियों और हल के फालों के व्यापक उपयोग ने गंगा के मैदानों के घने जंगलों को साफ करना और कठोर मिट्टी को जोतना संभव बना दिया।
2. **चावल की खेती का विस्तार:** इस क्षेत्र में चावल की खेती प्रमुखता से बढ़ी, जिससे कृषि अधिशेष (surplus) में भारी वृद्धि हुई।

इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप नए शहर (श्रावस्ती, राजगृह, वैशाली) उभरे और एक नई सामाजिक व्यवस्था का जन्म हुआ:

- **व्यापार और नगरीकरण:** कृषि अधिशेष ने व्यापार और वाणिज्य को बढ़ावा दिया। व्यापारियों और शिल्पकारों का एक नया वर्ग (वैश्य वर्ग) उभरा, जो आर्थिक रूप से समृद्ध था।
- **सामाजिक तनाव:** इस नई अर्थव्यवस्था ने मौजूदा वैदिक सामाजिक पदानुक्रम (चार वर्ण व्यवस्था) में तनाव पैदा किया।

वैचारिक चुनौती की जड़ें

जैन धर्म और बौद्ध धर्म द्वारा प्रस्तुत वैचारिक चुनौती इन सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों से गहराई से जुड़ी थी:

### 1. वैदिक व्यवस्था और ब्राह्मणवादी प्रभुत्व के विरुद्ध:

- वैदिक धर्म में पशु बलि और यज्ञों का था। ब्राह्मणों का वर्चस्व था।
- जैन और बौद्ध धर्म ने इस अनुष्ठान-उन्मुख और खर्चीले धर्म को चुनौती दी। उन्होंने यज्ञों की बजाय सदाचार, अहिंसा और व्यक्तिगत मुक्ति पर जोर दिया।

### 2. वैश्य वर्ग का समर्थन और आवश्यकताएँ:

- नया समृद्ध वैश्य वर्ग ब्राह्मणों के प्रभुत्व और समाज में अपने निम्न स्थान से असंतुष्ट था। उन्हें एक ऐसे धर्म की आवश्यकता थी जो उनकी आर्थिक सफलता को मान्यता दे।
- जैन और बौद्ध धर्म ने जाति व्यवस्था को सीधे तौर पर चुनौती नहीं दी, लेकिन जन्म के बजाय कर्म और नैतिक आचरण पर जोर दिया। इसने वैश्य वर्ग को आकर्षित किया।

### 3. अहिंसा का महत्व:

- कृषि और व्यापार के विकास के लिए पशुधन (बैल) महत्वपूर्ण था। वैदिक यज्ञों में पशु बलि इस नई अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक थी।

- जैन धर्म की 'अहिंसा परमो धर्म' की अवधारणा ने कृषि और व्यापारिक समुदायों को गहराई से आकर्षित किया, क्योंकि इससे उनके आर्थिक हितों की रक्षा होती थी।

#### 4. भाषा और पहुंच:

- वैदिक धर्म की भाषा संस्कृत थी, जो आम लोगों के लिए कठिन थी।
- बुद्ध ने पाली और महावीर ने प्राकृत भाषा का उपयोग किया, जो आम लोगों की भाषाएँ थीं। इससे इन धर्मों की पहुंच आसान हो गई और वे अधिक लोकप्रिय हो गए।

संक्षेप में, जैन और बौद्ध धर्म की वैचारिक चुनौतियाँ 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पूर्वी भारत में हुए क्रांतिकारी कृषि-आधारित सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों की सीधी प्रतिक्रिया थीं। इन धर्मों ने एक नया नैतिक और सामाजिक ढांचा प्रदान किया जो नई शहरी और व्यापारिक अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुकूल था, और इस प्रकार वैदिक रूढ़िवादिता को चुनौती दी।

#### Q.3.

(a) उत्तर वैदिक काल में विकसित जीवन पद्धति

उत्तर वैदिक काल (1000-600 ईसा पूर्व) की मुख्य विशेषताएं थीं:

- **राजतंत्र का सुदृढीकरण:** इस काल में राजा की शक्ति में वृद्धि हुई, राजपद वंशानुगत हो गया, और राजत्व को दैवीय समर्थन (राजा की दैवीय उत्पत्ति का सिद्धांत) से जोड़ा जाने लगा। 'राष्ट्र' की अवधारणा पहली बार सामने आई।
- **ब्राह्मणवादी प्रभुत्व और जटिल कर्मकांड:** ब्राह्मणों का समाज में वर्चस्व स्थापित हुआ। यज्ञ और अनुष्ठान अत्यंत जटिल और महंगे हो गए, जिससे पुरोहित वर्ग की शक्ति में भारी वृद्धि हुई। पशु बलि आम थी।
- **कठोर वर्ण व्यवस्था:** समाज चार वर्णों में स्पष्ट रूप से विभाजित हो गया, जिसमें ब्राह्मण और क्षत्रिय विशेषाधिकार प्राप्त थे, जबकि वैश्य और शूद्रों की स्थिति कमजोर थी।
- **भौगोलिक विस्तार:** आर्यों का विस्तार पंजाब से गंगा-यमुना दोआब और पूर्वी भारत की ओर हुआ, जिससे कृषि अर्थव्यवस्था का विकास हुआ।

गणराज्यों की उत्पत्ति प्रतिक्रिया के रूप में

गणराज्यों का उदय इन राजतंत्रीय और ब्राह्मणवादी प्रवृत्तियों के विकल्प के रूप में देखा जा सकता है:

#### 1. राजतंत्र के विकल्प के रूप में शासन:

- उत्तर वैदिक काल में जहाँ राजशाही हावी हो रही थी, वहीं हिमालय की तलहटी और पूर्वी भारत के कुछ क्षेत्रों में गणराज्यों ने एक वैकल्पिक शासन प्रस्तुत किया। इन गणराज्यों में सत्ता एक व्यक्ति (राजा) के हाथों में केंद्रित होने के बजाय, एक कुलीन परिषद या सभा (Assembly) के पास थी, जिसके सदस्य (राजा या गणमुख्य) सामूहिक रूप से निर्णय लेते थे। यह केंद्रीकृत, वंशानुगत राजशाही के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी।

## 2. ब्राह्मणवादी प्रभुत्व को चुनौती:

- गणराज्यों के अधिकांश शासक और कुलीन वर्ग क्षत्रिय थे (जैसे शाक्य राजकुमार सिद्धार्थ, जो बाद में बुद्ध बने)। वे अक्सर ब्राह्मणवादी कर्मकांडों और अनुष्ठानों के विरोधी थे या उनमें कम रुचि रखते थे।
- जैन धर्म और बौद्ध धर्म जैसे नए श्रमण आंदोलनों का उदय इन्हीं गणराज्यों में या इनके निकट हुआ, जिन्होंने ब्राह्मणवादी व्यवस्था को सीधे तौर पर चुनौती दी।

## 3. सामाजिक समतावाद का प्रयास:

- हालांकि गणराज्यों में भी एक कुलीन वर्ग का प्रभुत्व था, लेकिन राजतंत्रीय राज्यों की तुलना में यहाँ सामाजिक पदानुक्रम कुछ कम कठोर था। सभा में सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में एक प्रकार का समतावाद झलकता था, जो कठोर होती जा रही वर्ण व्यवस्था से अलग था।

## 4. भौगोलिक और आर्थिक कारक:

- कई गणराज्य गंगा के मैदानों के बाहरी इलाके में स्थित थे, जहाँ ब्राह्मणवादी संस्कृति और राजतंत्रीय प्रभाव कम मजबूत थे। इस भौगोलिक दूरी ने उन्हें अपनी विशिष्ट जीवन शैली और राजनीतिक संरचना बनाए रखने में मदद की।

प्रादेशिक गणराज्यों का उदय उत्तर वैदिक काल की जीवन पद्धति, विशेषकर केंद्रीकृत राजतंत्र, ब्राह्मणवादी प्रभुत्व, और कठोर सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध एक राजनीतिक और सामाजिक प्रतिक्रिया थी। उन्होंने शासन और सामाजिक संगठन का एक वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत किया, जिसने उस समय की बदलती सामाजिक-आर्थिक वास्तविकताओं को भी समायोजित किया।

(b) मौर्य साम्राज्य (लगभग 322-185 ईसा पूर्व) भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने पहली बार उत्तर भारत में एक विशाल और केंद्रीकृत राजनीतिक सत्ता स्थापित की। मौर्यों के शासन ने गंगा के मैदानों में भौतिक संस्कृति (Material Culture) के प्रसार को अत्यधिक सुगम बना दिया। यह प्रसार केवल राजधानी पाटलिपुत्र तक सीमित नहीं था, बल्कि साम्राज्य के सुदूर कोनों तक फैल गया था। "भौतिक संस्कृति" में शहरीकरण, लोहे का व्यापक उपयोग, मानकीकृत मृदभांड, वास्तुकला, और आर्थिक प्रणालियाँ शामिल हैं। मौर्यों ने इसे निम्नलिखित तरीकों से सुगम बनाया:

### 1. केंद्रीकृत प्रशासन और राजनीतिक एकता

- **स्थिरता और सुरक्षा:** एक विशाल, केंद्रीकृत साम्राज्य ने राजनीतिक स्थिरता और शांति सुनिश्चित की। अशोक के धम्म महामात्रों जैसे अधिकारियों ने पूरे साम्राज्य में आदेशों को लागू किया, जिससे एक समान प्रशासनिक ढांचा बना। इस स्थिरता ने व्यापार और वाणिज्य को बढ़ावा दिया।
- **समान कानून और व्यवस्था:** सुव्यवस्थित प्रशासन ने व्यापार मार्गों को सुरक्षित बनाया, जिससे वस्तुओं और विचारों का निर्बाध प्रवाह संभव हुआ।

### 2. शहरीकरण का विस्तार

- **नए शहरों का विकास:** राजधानी पाटलिपुत्र के अलावा, मौर्य प्रशासन ने कई नए शहरों और व्यापारिक केंद्रों (जैसे तक्षशिला, उज्जैन, कौशांबी) के विकास को प्रोत्साहित किया। इन शहरी केंद्रों ने भौतिक संस्कृति के प्रसार के बिंदुओं के रूप में कार्य किया।
- **व्यापारिक मार्गों का विकास:** मौर्यों ने व्यापार मार्गों का विकास किया और उन्हें सुरक्षित किया (उदाहरण के लिए, उत्तरापथ, जो उत्तर-पश्चिम से बंगाल तक जाता था)। इन मार्गों के किनारे भौतिक संस्कृति फैली।

### 3. लोहे का व्यापक उपयोग

- **कृषि और उत्पादन में वृद्धि:** मौर्य काल में लोहे का उपयोग अपने चरम पर था। लोहे के औजारों (हल, कुल्हाड़ी) के उपयोग ने गंगा के मैदानों में कृषि विस्तार को सुगम बनाया। लोहे की खदानों पर राज्य का नियंत्रण था, जिससे उत्पादन बढ़ा।
- **सैन्य और दैनिक उपयोग:** लोहे का उपयोग न केवल कृषि, बल्कि सैन्य उपकरणों और दैनिक जीवन के औजारों में भी किया गया, जिससे भौतिक संस्कृति का तकनीकी स्तर बढ़ा।

### 4. मानकीकृत संस्कृति के प्रमाण

- **उत्तरी काले पॉलिशदार मृद्भांड (NBPW):** यह एक विशिष्ट प्रकार के उच्च-गुणवत्ता वाले, चमकदार काले मिट्टी के बर्तन थे। ये बर्तन मौर्य साम्राज्य के लगभग हर हिस्से में पाए गए हैं, जो मानकीकृत और व्यापक रूप से फैली हुई भौतिक संस्कृति का प्रमाण है।
- **सिक्कों का मानकीकरण:** मौर्यों ने मानकीकृत पंच-चिह्नित सिक्कों (punch-marked coins) की शुरुआत की। इन सिक्कों ने एक समान मुद्रा प्रणाली प्रदान की, जिसने अर्थव्यवस्था के मुद्रीकरण और व्यापार को बहुत सुगम बना दिया।

### 5. शाही वास्तुकला और कला

- **अशोक के स्तंभ और स्तूप:** अशोक द्वारा निर्मित पत्थर के स्तंभ और स्तूप (जैसे साँची का स्तूप) पूरे साम्राज्य में फैले हुए थे। ये केवल धार्मिक स्मारक नहीं थे, बल्कि शाही सत्ता, कलात्मक कौशल और एक समान वास्तुकला शैली के प्रतीक थे, जिन्होंने भौतिक संस्कृति के प्रसार में योगदान दिया।

### निष्कर्ष

मौर्य साम्राज्य ने अपनी मजबूत प्रशासन, सुरक्षित व्यापार मार्गों, शहरीकरण और मानकीकृत आर्थिक व सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से भौतिक संस्कृति के प्रसार को अभूतपूर्व रूप से सुगम बना दिया। गंगा के मैदानों से परे, साम्राज्य के सुदूर दक्षिणी और उत्तरी क्षेत्रों तक एक समान भौतिक संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं, जो मौर्यों की संगठनात्मक क्षमता को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं।

(c) प्रथम से तृतीय शताब्दी ईस्वी के दौरान भारत के मध्य एशिया से संपर्क मुख्य रूप से **कुषाण साम्राज्य** के उद्भव द्वारा परिभाषित किए गए, जिसने एक विशाल अंतरमहाद्वीपीय साम्राज्य बनाया। इन संपर्कों की प्रकृति बहुआयामी थी, जो खानाबदोश लोगों के प्रवास से शुरू हुई और एक गहरे सांस्कृतिक और आर्थिक आदान-प्रदान में परिणत हुई, जिसने भारत के राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्रों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया।

## संपर्कों की प्रकृति

संपर्क की प्रकृति मुख्य रूप से तीन प्रकार की थी:

- **जनसांख्यिकीय और राजनीतिक प्रवास:** इन संपर्कों की शुरुआत मध्य एशियाई खानाबदोश जनजातियों, जैसे यूच-चि (कुषाणों) के भारत में प्रवास और बसने से हुई। उन्होंने उत्तर-पश्चिमी भारत और गंगा के मैदानों के एक बड़े हिस्से पर नियंत्रण स्थापित कर एक साम्राज्य बनाया।
- **व्यापार और वाणिज्यिक संबंध:** भारत और मध्य एशिया के बीच संबंध मुख्य रूप से रेशम मार्ग (Silk Road) के माध्यम से व्यापार पर आधारित थे। भारत इस मार्ग का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया।
- **सांस्कृतिक और धार्मिक आदान-प्रदान:** बौद्ध धर्म इस अवधि के दौरान मध्य एशिया के माध्यम से चीन तक फैला, जिससे भारत और इस क्षेत्र के बीच गहन धार्मिक और कलात्मक संपर्क स्थापित हुए।

## भारत के क्षेत्रों पर प्रभाव

### 1. राजनीतिक प्रभाव:

- **कुषाण साम्राज्य की स्थापना:** कुषाणों ने भारत में एक शक्तिशाली और स्थिर साम्राज्य की स्थापना की, जिसने उत्तर-पश्चिमी सीमा को सुरक्षित किया और राजनीतिक एकता प्रदान की।
- **"देवपुत्र" की उपाधि:** कुषाण राजाओं ने चीनी शासकों से प्रेरित होकर "देवपुत्र" जैसी उपाधियाँ अपनाईं, जो शाही प्रतिष्ठा और राजनीतिक विचारों के आदान-प्रदान को दर्शाती हैं।
- **साम्राज्य का विस्तार:** कुषाण नियंत्रण ने भारत और मध्य एशिया के बीच एक राजनीतिक सेतु का काम किया, जिससे दोनों क्षेत्रों के बीच संपर्क आसान हो गए।

### 2. सांस्कृतिक प्रभाव:

- **गांधार कला का विकास:** यह संपर्क का सबसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक परिणाम था। गांधार कला शैली, जिसने भारतीय और हेलेनिस्टिक-रोमन (मध्य एशिया के माध्यम से आई) शैलियों को मिश्रित किया, ने बुद्ध की मूर्तियों को मानव रूप में ढालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- **बौद्ध धर्म का प्रसार:** बौद्ध धर्म मध्य एशिया से होकर चीन, कोरिया और जापान तक फैला। कुषाण राजा कनिष्क ने बौद्ध धर्म को सक्रिय रूप से संरक्षण दिया, चौथी बौद्ध संगीति का आयोजन किया और मिशनरियों को मध्य एशिया भेजा।
- **नई भाषा और लिपियाँ:** खरोष्ठी लिपि का उपयोग इस क्षेत्र में आम हो गया, और नए भाषाई तत्व भी सामने आए।

### 3. आर्थिक प्रभाव:

- **रेशम मार्ग पर नियंत्रण:** कुषाण साम्राज्य ने रेशम मार्ग के एक महत्वपूर्ण हिस्से को नियंत्रित किया, जिससे वे चीन और रोमन साम्राज्य के बीच व्यापार के मध्यस्थ बन गए। इससे साम्राज्य को भारी आर्थिक लाभ हुआ।
- **स्वर्ण सिक्कों का प्रचलन:** कुषाणों ने बड़ी मात्रा में सोने के सिक्के जारी किए, जो रोमन सिक्कों की नकल थे। यह व्यापक व्यापार और समृद्ध अर्थव्यवस्था का प्रतीक है।

- **व्यापारिक वस्तुओं का आदान-प्रदान:** भारत से मसाले, हाथी दांत, वस्त्र और कीमती पत्थर मध्य एशिया के माध्यम से पश्चिम में भेजे जाते थे, जबकि रोमन शराब, धातु उत्पाद और सोना भारत आता था।

संक्षेप में, प्रथम से तृतीय शताब्दी ईस्वी के दौरान भारत-मध्य एशिया संपर्कों ने भारत के इतिहास को गहराई से प्रभावित किया। इन संपर्कों ने एक नई राजनीतिक शक्ति (कुषाण) की स्थापना की, एक अद्वितीय सांस्कृतिक संश्लेषण (गांधार कला और बौद्ध धर्म का प्रसार) को जन्म दिया, और भारत को अंतरराष्ट्रीय व्यापार नेटवर्क (रेशम मार्ग) का एक प्रमुख केंद्र बनाकर आर्थिक रूप से समृद्ध किया।

## Section (B)

### Q.4

(a) पूर्व मध्यकालीन भारत (लगभग 7वीं से 13वीं शताब्दी ईस्वी) में सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया अत्यधिक जटिल थी। यह सही है कि यह प्रक्रिया **जातिगत पदानुक्रम, धार्मिक वैधता, आर्थिक परिवर्तन, और राजनीतिक संरक्षण** के बीच एक जटिल अंतःक्रिया से प्रभावित थी। इन कारकों ने मिलकर एक ऐसी सामाजिक संरचना को पुनर्गठित किया जो ऊपर से स्थिर दिखती थी, लेकिन अंदर से गतिशील थी। कारकों की जटिल अंतःक्रिया

#### 1. जातिगत पदानुक्रम और उसकी निरंतरता:

जाति व्यवस्था पूर्व मध्यकालीन समाज की नींव थी। यह एक बंद प्रणाली प्रतीत होती थी जहाँ गतिशीलता मुश्किल थी। हालांकि, यह पूरी तरह से कठोर नहीं थी। स्थानीय स्तर पर, नई जातियों का उद्भव और मौजूदा जातियों की स्थिति में परिवर्तन निरंतर होता रहा। 'जाति' शब्द अक्सर 'पेशे' के साथ जुड़ गया, जिससे लचीलापन आया।

#### 2. धार्मिक वैधता की भूमिका:

धर्म (विशेषकर हिंदू धर्म) ने जाति व्यवस्था को सैद्धांतिक वैधता प्रदान की। ब्राह्मणों ने धार्मिक ग्रंथों और अनुष्ठानों के माध्यम से पदानुक्रम को उचित ठहराया। हालांकि, धर्म ने गतिशीलता के रास्ते भी खोले।

- **संस्कृतिकरण (Sanskritization):** निम्न जातियाँ अक्सर अपनी सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने के लिए उच्च जातियों, विशेषकर ब्राह्मणों, की प्रथाओं, रीति-रिवाजों और देवताओं की नकल करती थीं। यह एक धीमी गतिशीलता थी जिसे धार्मिक स्वीकृति मिलती थी।
- **भक्ति आंदोलन:** बाद में भक्ति आंदोलन ने जाति व्यवस्था की रूढ़िवादिता को चुनौती दी और सभी जातियों के लोगों को धार्मिक समानता का अवसर प्रदान किया।

#### 3. आर्थिक परिवर्तन का प्रभाव:

आर्थिक परिवर्तन सामाजिक गतिशीलता के लिए एक प्रमुख उत्प्रेरक थे।

- **कृषि का विस्तार:** कृषि अर्थव्यवस्था के विस्तार और नए क्षेत्रों में खेती शुरू होने से नई ज़मींदार वर्ग (जैसे राजपूत) का उदय हुआ, जिन्हें सामाजिक पदानुक्रम में स्थान मिला।

- **व्यापार और शिल्प:** व्यापार में लगे व्यापारी और नए शिल्पों से जुड़े कारीगर अक्सर अपनी आर्थिक समृद्धि के आधार पर सामाजिक प्रतिष्ठा की मांग करते थे, जिससे उनकी जाति की स्थिति में परिवर्तन संभव हुआ।

#### 4. राजनीतिक संरक्षण की भूमिका:

राजनीतिक संरक्षण सामाजिक गतिशीलता के लिए सबसे प्रत्यक्ष और महत्वपूर्ण कारक था।

- **नए राजवंशों का उद्भव:** कई राजवंश (जैसे राजपूत, मराठा) निम्न या जनजातीय पृष्ठभूमि से उभरे। जब इन शासकों ने सत्ता हासिल की, तो उन्होंने अपनी नई स्थिति को वैध बनाने के लिए ब्राह्मणों का संरक्षण प्राप्त किया।
- **धार्मिक वैधता प्राप्त करना:** ब्राह्मणों ने इन नए शासकों को पौराणिक वंशावलियाँ प्रदान करके या यज्ञों के माध्यम से उन्हें क्षत्रिय का दर्जा देकर राजनीतिक संरक्षण का प्रतिदान किया। यह ब्राह्मण-राजा गठजोड़ सामाजिक गतिशीलता का एक प्रमुख उदाहरण था।

भारतीय सामाजिक संरचना का पुनर्गठन

इन कारकों ने सामूहिक रूप से सामाजिक संरचना को पूरी तरह से नष्ट नहीं किया, बल्कि इसे पुनर्गठित किया:

- **जाति व्यवस्था का लचीलापन:** जाति व्यवस्था समाप्त नहीं हुई, लेकिन गतिशीलता की प्रक्रियाओं ने इसे स्थानीय और प्रादेशिक स्तर पर लचीला बना दिया।
- **क्षेत्रीय विविधता:** सामाजिक संरचना पूरे भारत में एक समान नहीं थी। प्रादेशिक स्तर पर स्थानीय कारक अधिक महत्वपूर्ण थे।
- **निरंतर परिवर्तन:** सामाजिक गतिशीलता की निरंतर प्रक्रिया ने यह सुनिश्चित किया कि सामाजिक पदानुक्रम स्थिर रहे लेकिन व्यक्तिगत समूहों की स्थिति बदलती रहे।

आलोचनात्मक मूल्यांकन से पता चलता है कि पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज में गतिशीलता मौजूद थी, लेकिन यह एक ऊर्ध्वाधर (vertical) गतिशीलता थी जहाँ समूहों की स्थिति बदली, न कि एक क्षैतिज (horizontal) गतिशीलता जहाँ व्यवस्था ही बदल गई हो। यह एक जटिल और गतिशील प्रक्रिया थी जहाँ राजनीतिक और आर्थिक शक्ति अक्सर धार्मिक स्वीकृति प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करती थी।

**(b) छठी से आठवीं शताब्दी ईस्वी के दौरान दक्षिण भारत में पल्लवों (कांचीपुरम के) और बादामी के चालुक्यों के बीच लंबे समय तक चले संघर्ष ने इस क्षेत्र के राजनीतिक परिदृश्य को महत्वपूर्ण रूप से आकार दिया। यह प्रतिद्वंद्विता केवल दो पड़ोसी राज्यों के बीच का संघर्ष नहीं थी, बल्कि दक्षिण भारत में सर्वोच्च शक्ति के लिए एक व्यापक भू-राजनीतिक संघर्ष था।**

संघर्ष के कारण

पल्लव-चालुक्य संघर्ष के मुख्य कारण निम्नलिखित थे:

- **क्षेत्रीय प्रभुत्व की महत्वाकांक्षा:** दोनों राजवंश दक्षिण भारत में सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति बनना चाहते थे। उनके राज्य एक-दूसरे से सटे हुए थे, जिससे सीमा विवाद और प्रभाव क्षेत्र का विस्तार स्वाभाविक रूप से संघर्ष का कारण बना।

- **कृष्णा-तुंगभद्रा दोआब पर नियंत्रण:** कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच का उपजाऊ दोआब क्षेत्र आर्थिक रूप से बहुत समृद्ध था। इस क्षेत्र पर नियंत्रण न केवल राजस्व के लिए महत्वपूर्ण था, बल्कि रणनीतिक रूप से भी महत्वपूर्ण था। यह क्षेत्र लगातार युद्ध का मैदान बना रहा।
- **राजधानी शहरों पर हमला:** एक-दूसरे की राजधानी पर हमला करना और कब्जा करना शक्ति प्रदर्शन का एक तरीका बन गया था। चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय ने पल्लव राजधानी कांची पर "आक्रमण" किया, और पल्लव राजा नरसिंहवर्मन प्रथम ने चालुक्य राजधानी बादामी पर "आक्रमण" करके उस पर "अधिकार" कर लिया और "वातापीकोंडा" (बादामी का विजेता) की उपाधि धारण की।
- **वंशावलीगत प्रतिष्ठा:** एक-दूसरे पर सैन्य विजय प्राप्त करना राजाओं के लिए प्रतिष्ठा का विषय था। अभिलेखों और प्रशस्तियों में अपनी सफलताओं का बखान करना महत्वपूर्ण माना जाता था, जिससे प्रतिद्वंद्विता और भी तीव्र हो गई।
- **पूर्वी दक्कन (वेंगी क्षेत्र) पर नियंत्रण:** आंध्र प्रदेश में वेंगी का क्षेत्र भी एक रणनीतिक बिंदु था। इस क्षेत्र पर नियंत्रण के लिए भी दोनों शक्तियों के बीच संघर्ष होता था।

प्रतिद्वंद्विता का दक्षिण भारत की सत्ता संरचना पर प्रभाव

पल्लव-चालुक्य प्रतिद्वंद्विता ने दक्षिण भारत की सत्ता संरचना को कई तरीकों से प्रभावित किया:

- **द्विध्रुवीय शक्ति संरचना का निर्माण:** इस संघर्ष ने दक्षिण भारत को मोटे तौर पर दो प्रमुख शक्ति क्षेत्रों में विभाजित कर दिया - एक तरफ पल्लव (दक्षिण-पूर्व में) और दूसरी तरफ चालुक्य (उत्तर-पश्चिम दक्कन में)।
- **संसाधनों की भारी खपत:** निरंतर युद्धों के कारण दोनों साम्राज्यों के संसाधनों (मानव और वित्तीय) की भारी खपत हुई। इससे दोनों शक्तियाँ कमजोर हुईं, जिससे अंततः बाद में अन्य शक्तियों के उदय का मार्ग प्रशस्त हुआ।
- **अन्य शक्तियों का उदय (राष्ट्रकूट और चोल):** दोनों साम्राज्यों की आपसी कमजोरियों का फायदा उठाकर नई शक्तियाँ उभरीं। आठवीं शताब्दी के मध्य में, दक्कन में चालुक्यों को राष्ट्रकूटों ने विस्थापित कर दिया। बाद में, चोल राजवंश ने पल्लवों के प्रभाव को समाप्त कर दिया और दक्षिण भारत की प्रमुख शक्ति बन गए।
- **राजनीतिक अस्थिरता:** सीमावर्ती क्षेत्रों में बार-बार सत्ता परिवर्तन और युद्धों के कारण राजनीतिक अस्थिरता बनी रही।
- **कला और वास्तुकला का विकास:** युद्धों के बावजूद, इस काल में कला और वास्तुकला का अभूतपूर्व विकास हुआ। दोनों राजवंशों ने अपनी शक्ति और धार्मिक निष्ठा प्रदर्शित करने के लिए भव्य मंदिरों का निर्माण किया (पल्लवों के महाबलीपुरम के रथ मंदिर और चालुक्यों के बादामी, ऐहोल और पट्टडकल के मंदिर)।

संक्षेप में, पल्लव-चालुक्य संघर्ष ने दक्षिण भारत में एक अस्थिर द्विध्रुवीय सत्ता संरचना का निर्माण किया। इसने दोनों साम्राज्यों को कमजोर किया और अंततः राष्ट्रकूटों और चोलों जैसे नए और अधिक शक्तिशाली साम्राज्यों के उत्थान में योगदान दिया, जिससे दक्षिण भारत की सत्ता संरचना पूरी तरह पुनर्गठित हो गई।

(c) पूर्व मध्यकालीन भारत (लगभग 750-1200 ईस्वी) में कला और साहित्य के विकास ने महत्वपूर्ण चरणों का अनुभव किया, जो उस काल के समाज, राजनीति और संरक्षण स्वरूप में व्यापक परिवर्तनों को गहराई से प्रतिबिंबित करते हैं। यह कालखंड राजनीतिक विखंडन, क्षेत्रीय साम्राज्यों के उदय और सामंतवाद के प्रसार की विशेषता थी, जिसने कला और साहित्य को एक विशिष्ट दिशा दी।

कला के विकास के प्रमुख चरण और प्रभाव

पूर्व मध्यकाल में कला का विकास मुख्य रूप से क्षेत्रीय राजवंशों के संरक्षण में हुआ, जिससे वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रकला में विशिष्ट प्रांतीय शैलियाँ उभरीं:

- **क्षेत्रीय शैलियों का उत्कर्ष:** इस काल में एक सार्वभौमिक 'शाही' शैली (जैसे गुप्त काल की) के स्थान पर कई क्षेत्रीय शैलियाँ विकसित हुईं, जो राजनीतिक विखंडन को दर्शाती हैं।
  - **उत्तर भारत:** गुर्जर-प्रतिहार, चंदेल, सोलंकी और पाल शासकों के अधीन विभिन्न शैलियाँ विकसित हुईं (जैसे खजुराहो के मंदिर)।
  - **दक्षिण भारत:** पल्लव, चालुक्य, राष्ट्रकूट और चोल शासकों ने द्रविड़ और वेसर शैलियों को चरम पर पहुँचाया (जैसे तंजावुर का बृहदीश्वर मंदिर, एलोरा का कैलाश मंदिर)।
- **संरक्षण का स्वरूप (राजत्व का प्रतीक):** मंदिरों का निर्माण केवल धार्मिक स्थल नहीं था, बल्कि यह शासक की शक्ति, प्रतिष्ठा और धार्मिक वैधता का प्रतीक बन गया था। सामंतवादी व्यवस्था में, राजाओं ने अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए मंदिरों को भूमि अनुदान (जागीर) और संरक्षण दिया। यह संरक्षण का विकेंद्रीकृत स्वरूप था।
- **धार्मिक प्रभाव (हिंदू धर्म का पुनरुत्थान):** अधिकांश कला ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म के पुनरुत्थान को दर्शाती है। मंदिरों की वास्तुकला और मूर्तिकला में विष्णु, शिव और देवी की जटिल पौराणिक कथाओं का चित्रण प्रमुखता से किया गया, जो भक्ति आंदोलन के प्रभाव को भी दर्शाता है।
- **कला और समाज:** मंदिरों ने न केवल धार्मिक कार्य, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक गतिविधियों के केंद्रों के रूप में भी कार्य किया, जो समाज में धर्म की केंद्रीय भूमिका को दर्शाता है।

साहित्य के विकास के प्रमुख चरण और प्रभाव

साहित्य का विकास भी संरक्षण के स्वरूप और सामाजिक परिवर्तनों से प्रभावित था:

- **संस्कृत साहित्य का निरंतर प्रभुत्व:** संस्कृत अभी भी दरबारी भाषा थी और इस काल में कई महत्वपूर्ण ग्रंथ, काव्य और नाटक लिखे गए (जैसे कल्हण की "राजतरंगिणी", जयदेव का "गीत गोविंद", और भवभूति के नाटक)।
- **क्षेत्रीय भाषाओं का उदय:** यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था। तमिल, कन्नड़, तेलुगु और मराठी जैसी क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्य का विकास शुरू हुआ। यह उस समय की क्षेत्रीय पहचान और राजनीतिक स्वायत्तता के उदय को प्रतिबिंबित करता था।
- **संरक्षण का स्वरूप (दरबारी और मठवासी):** साहित्य को राजाओं (जैसे राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष द्वारा कन्नड़ साहित्य का संरक्षण) और धार्मिक संस्थानों (मठों) दोनों से संरक्षण मिला।

- **धार्मिक और दार्शनिक साहित्य:** भक्ति आंदोलन के प्रभाव से क्षेत्रीय भाषाओं में धार्मिक साहित्य का सृजन बढ़ा। शंकराचार्य और रामानुज जैसे दार्शनिकों ने संस्कृत में महत्वपूर्ण भाष्य लिखे।

### निष्कर्ष

पूर्व मध्यकालीन भारत में कला और साहित्य के विकास के चरण उस काल की राजनीतिक अस्थिरता, सामंतवाद, और क्षेत्रीय पहचान के उदय के प्रतिबिंब थे। संरक्षण का स्वरूप केंद्रीकृत शाही दरबारों से हटकर क्षेत्रीय राजाओं और धार्मिक संस्थानों की ओर चला गया। इस अवधि ने कला और साहित्य की एक समृद्ध और विविध विरासत छोड़ी, जो भारतीय समाज में धर्म की केंद्रीय भूमिका और क्षेत्रीय संस्कृतियों के उत्कर्ष को स्पष्ट रूप से दर्शाती है।

### Q.5

(a) उत्तर मध्यकालीन भारत (लगभग 13वीं से 18वीं शताब्दी ईस्वी) में प्रांतीय भाषाओं (क्षेत्रीय भाषाओं) के साहित्य के विकास में धार्मिक विषयों ने केंद्रीय और निर्णायक भूमिका निभाई। यह टिप्पणी इस तथ्य की पुष्टि करती है कि इस काल के अधिकांश साहित्यिक सृजन का मूल प्रेरणा स्रोत भक्ति और सूफी आंदोलन थे।

#### धार्मिक विषयों का प्रभुत्व

इस काल में विभिन्न प्रांतीय भाषाओं में रचा गया साहित्य मुख्य रूप से धार्मिक संदेशों, ईश्वर की स्तुति और आध्यात्मिक दर्शन पर केंद्रित था।

- **भक्ति आंदोलन का प्रभाव:** भक्ति आंदोलन ने प्रांतीय भाषाओं को साहित्य का माध्यम बनाया। संतों और भक्तों ने संस्कृत के प्रभुत्व को चुनौती दी और आम लोगों की भाषा में अपने विचार व्यक्त किए।
  - **हिंदी (ब्रज और अवधी):** तुलसीदास की "रामचरितमानस" (अवधी में राम भक्ति), सूरदास की "सूरसागर" (ब्रज में कृष्ण भक्ति), और कबीर व जायसी जैसे संतों का साहित्य प्रमुख उदाहरण हैं।
  - **बंगाली:** चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से वैष्णव साहित्य (चंडीदास, विद्यापति) का विकास हुआ।
  - **मराठी:** ज्ञानेश्वर, नामदेव और तुकाराम ने अभंगों के माध्यम से विठ्ठल भक्ति का प्रचार किया।
  - **अन्य भाषाएँ:** असमिया, उड़िया, गुजराती, और पंजाबी (गुरु ग्रंथ साहिब का संकलन) में भी धार्मिक साहित्य का बोलबाला था।
- **सूफी आंदोलन का प्रभाव:** सूफी संतों ने भी क्षेत्रीय भाषाओं, विशेषकर हिंदी (अवधी) का उपयोग किया। उन्होंने प्रेम कहानियों के माध्यम से ईश्वर के प्रति प्रेम की भावना को व्यक्त किया (जैसे मलिक मुहम्मद जायसी की "पद्मावत")।

#### प्रभुत्व के कारण

धार्मिक विषयों के प्रभुत्व के पीछे कई कारण थे:

- **भाषा की सुगमता:** संस्कृत से प्रांतीय भाषाओं की ओर संक्रमण ने साहित्य को आम लोगों तक पहुँचाया।

- **सामाजिक और धार्मिक आवश्यकताएँ:** भक्ति आंदोलन ने जटिल कर्मकांडों के खिलाफ एक सरल मार्ग प्रस्तुत किया, जिससे जनता बड़ी संख्या में जुड़ी।
- **संरक्षण का स्वरूप:** राजाओं के अलावा, मंदिरों, मठों और आम लोगों ने भी इस साहित्य को संरक्षण दिया।

**निष्कर्षतः,** उत्तर मध्यकालीन भारत में प्रांतीय भाषाओं में साहित्य का एक बड़ा अनुभाग धार्मिक विषयों से प्रेरित था। भक्ति और सूफी आंदोलनों ने इन भाषाओं को साहित्यिक माध्यम के रूप में स्थापित किया, जिससे साहित्य का लोकतंत्रीकरण हुआ और यह समाज के हर वर्ग तक पहुँचा। यह काल भारतीय भाषाओं के साहित्य के स्वर्ण युगों में से एक माना जाता है।

**(b)** अलाउद्दीन खिलजी के आर्थिक उपाय, विशेषकर उसकी बाजार नियंत्रण नीति, दिल्ली सल्तनत के इतिहास में एक अनूठा और साहसी कदम थे। इन उपायों का प्राथमिक लक्ष्य केवल आर्थिक दक्षता प्राप्त करना नहीं था, बल्कि सल्तनत में **राजनीतिक सत्ता का पूर्ण केंद्रीकरण** करना था। इन नीतियों ने सुल्तान की संप्रभुता को मजबूत किया और क्षेत्रीय व गुटीय शक्तियों के प्रभाव को कम किया।

अलाउद्दीन के आर्थिक उपायों ने निम्नलिखित तरीकों से राजनीतिक सत्ता के केंद्रीकरण में मदद की:

1. एक विशाल और सस्ती सेना का रखरखाव

राजनीतिक सत्ता को केंद्रीकृत करने और मंगोल आक्रमणों का प्रभावी ढंग से मुकाबला करने के लिए एक बड़ी और स्थायी सेना आवश्यक थी। हालांकि, इतनी बड़ी सेना को सामान्य वेतन पर बनाए रखना राजकोष के लिए संभव नहीं था।

- **मूल्य नियंत्रण का उद्देश्य:** अलाउद्दीन ने दैनिक उपयोग की सभी आवश्यक वस्तुओं - अनाज, कपड़ा, घोड़े, मवेशी और दास - की कीमतें निर्धारित कर दीं।
- **राजनीतिक परिणाम:** कम और स्थिर कीमतों ने सैनिकों को उनके अपेक्षाकृत कम वेतन पर भी सम्मानजनक जीवन जीने में मदद की। इससे सुल्तान को बिना राजकोष पर अत्यधिक बोझ डाले एक बड़ी, वफादार और अनुशासित सेना बनाए रखने में सफलता मिली, जो उसकी केंद्रीय शक्ति का मुख्य स्तंभ थी।

2. प्रांतीय सरदारों और अभिजात वर्ग की शक्ति पर अंकुश

केंद्रीय सत्ता को मजबूत करने के लिए, अलाउद्दीन ने उन शक्तिशाली अभिजात वर्गों (अमीरों और प्रांतीय सरदारों) की शक्ति को कम करना आवश्यक समझा, जो अक्सर विद्रोह करते थे।

- **धन का संकेंद्रण रोकना:** मूल्य नियंत्रण नीति ने व्यापारियों और कुलीनों के लिए कालाबाजारी और अत्यधिक मुनाफाखोरी करना असंभव बना दिया, जिससे उनके पास धन जमा होना बंद हो गया।
- **विशेषाधिकारों की समाप्ति:** उसने "खुत" (ज़मींदारों), "मुकद्दम" (गाँव के मुखिया), और "चौधरी" के विशेष विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया। उनसे कर वसूले गए, उन्हें सामान्य किसानों के स्तर पर ला दिया गया, जिससे ग्रामीण अभिजात वर्ग की आर्थिक और राजनीतिक शक्ति कमजोर हो गई।

- **अमीरों पर नियंत्रण:** उसने अमीरों को सुल्तान की अनुमति के बिना सामाजिक समारोहों और वैवाहिक गठबंधनों को बनाने से प्रतिबंधित कर दिया, जिससे उनके स्वतंत्र शक्ति केंद्र बनाने की संभावना समाप्त हो गई।

### 3. राजस्व प्रशासन का केंद्रीकरण

अलाउद्दीन ने एक मजबूत और केंद्रीकृत राजस्व प्रशासन स्थापित किया ताकि राज्य के वित्त पर सुल्तान का सीधा नियंत्रण हो।

- **भूमि माप और प्रत्यक्ष कर संग्रह:** उसने भूमि की माप करवाई और भू-राजस्व (खराज) की दर बढ़ाकर 50% कर दी, जिसे या तो अनाज या नकद के रूप में एकत्र किया जा सकता था।
- **बिचौलियों की समाप्ति:** राजस्व संग्रह को सीधे शाही अधिकारियों के नियंत्रण में लाया गया, जिससे स्थानीय बिचौलियों की भूमिका समाप्त हो गई और केंद्र सरकार की ग्रामीण क्षेत्रों पर पकड़ मजबूत हुई।
- **नया विभाग:** उसने राजस्व संग्रह की देखरेख के लिए 'दीवान-ए-रियासत' और 'शाहना-ए-मंडी' जैसे नए विभागों और अधिकारियों की स्थापना की, जो सीधे सुल्तान को रिपोर्ट करते थे।

### निष्कर्ष

अलाउद्दीन खिलजी के आर्थिक उपाय, हालांकि कुछ हद तक आम जनता को राहत देने वाले प्रतीत होते थे, मुख्य रूप से राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित थे। इन उपायों का अंतिम लक्ष्य एक विशाल सेना के रखरखाव के माध्यम से सुल्तान की सत्ता को मजबूत करना, विद्रोही अभिजात वर्ग की शक्ति को कुचलना, और राज्य के वित्त पर पूर्ण केंद्रीय नियंत्रण स्थापित करना था। इस प्रकार, ये आर्थिक सुधार वास्तव में दिल्ली सल्तनत में राजनीतिक सत्ता के केंद्रीकरण के लिए एक शक्तिशाली उपकरण थे।

(c) मुगल भारत में शाही कारखाने (जिन्हें 'कारखाना' कहा जाता था) साम्राज्य की अर्थव्यवस्था और प्रशासन में एक अद्वितीय और महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। ये केवल उत्पादन इकाइयाँ नहीं थीं; वे मुगल राज्य की वैचारिक (ideological) और कार्यात्मक (functional) अनिवार्यताओं को दर्शाने वाले जटिल संस्थान थे। उनका आलोचनात्मक मूल्यांकन उनकी दोहरी प्रकृति को उजागर करता है।

शाही कारखानों की भूमिका का आलोचनात्मक मूल्यांकन

### कार्यात्मक अनिवार्यताओं को प्रतिबिंबित करना:

1. **शाही जरूरतों की पूर्ति:** कारखानों का प्राथमिक कार्य शाही घराने, दरबार और सेना की विलासिता और दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करना था। यहाँ कपड़े, हथियार, आभूषण, कालीन, तम्बू, और अन्य विशिष्ट वस्तुएँ बनाई जाती थीं। यह दक्षता के लिए राज्य की आवश्यकता को दर्शाता था।
2. **गुणवत्ता नियंत्रण और मानकीकरण:** कारखानों ने उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों के उत्पादन को सुनिश्चित किया। अकबर के समय में, गुणवत्ता नियंत्रण के लिए विस्तृत नियम और अधिकारी (जैसे 'मीर-ए-सामान') थे, जो केंद्रीकृत प्रशासन और दक्षता की आवश्यकता को दर्शाते थे।
3. **राजस्व और आर्थिक गतिविधि:** हालांकि ये मुख्य रूप से बाजार के लिए उत्पादन नहीं करते थे, लेकिन इन कारखानों ने कई कुशल कारीगरों को रोजगार दिया, आर्थिक गतिविधियों को

प्रोत्साहित किया और कुछ हद तक राज्य के राजस्व में भी योगदान दिया (कभी-कभी कुछ उत्पाद बेचे जाते थे)।

4. **तकनीकी नवाचार का केंद्र:** ये कारखाने अक्सर नए शिल्पों, तकनीकों और डिजाइनों के लिए नवाचार केंद्र थे, जहाँ कारीगर शाही संरक्षण में अपनी कला को निखारते थे।

#### वैचारिक अनिवार्यताओं को प्रतिबिंबित करना:

1. **शाही प्रतिष्ठा और भव्यता:** कारखानों द्वारा उत्पादित भव्य और विशिष्ट वस्तुएं मुगल सम्राट की प्रतिष्ठा, शक्ति और धन का प्रतीक थीं। एक सम्राट की महानता उसकी जीवन शैली की भव्यता से मापी जाती थी, और कारखाने इस भव्यता को संभव बनाते थे।
2. **संरक्षण और नियंत्रण:** कारखानों ने राज्य को अपने नियंत्रण में कुशल कारीगरों के एक बड़े वर्ग को संरक्षण देने की अनुमति दी। यह संरक्षण सुल्तान के उदारवादी छवि को दर्शाता था, लेकिन साथ ही कारीगरों पर राज्य के पूर्ण नियंत्रण (राज्य के कर्मचारी के रूप में) को भी सुनिश्चित करता था।
3. **फारसी और भारतीय संस्कृतियों का संश्लेषण:** कारखानों में बनी वस्तुएं अक्सर फारसी, मध्य एशियाई और भारतीय कलात्मक शैलियों का मिश्रण होती थीं। यह उस समय की मुगल संस्कृति के संश्लेषणवादी (syncretic) और बहु-सांस्कृतिक लोकाचार को दर्शाता है।
4. **राज्य की शक्ति का प्रदर्शन:** कारखानों की दक्षता और उत्पादन क्षमता राज्य की संगठनात्मक शक्ति और नियंत्रण का एक दृश्य प्रदर्शन थे।

#### आलोचनात्मक मूल्यांकन

- **कुशल श्रम का शोषण:** एक आलोचना यह है कि कारखानों में काम करने वाले कारीगर अक्सर राज्य के कर्मचारी होते थे, जिन्हें बाजार-आधारित मजदूरी से कम भुगतान किया जाता था। हालांकि उन्हें कुछ सुरक्षा मिलती थी, लेकिन वे राज्य के कठोर नियंत्रण में थे।
- **आर्थिक दक्षता बनाम प्रतिष्ठा:** कारखाने हमेशा आर्थिक रूप से कुशल नहीं थे। उनका मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना नहीं, बल्कि शाही भव्यता और जरूरतों को पूरा करना था, जो राज्य के संसाधनों पर एक बड़ा बोझ था।
- **सीमित बाजार प्रभाव:** चूंकि उत्पादन मुख्य रूप से शाही खपत के लिए था, इसलिए उन्होंने व्यापक बाजार अर्थव्यवस्था या औद्योगिक क्रांति पर सीमित प्रभाव डाला।

#### निष्कर्ष

मुगल शाही कारखाने राज्य की कार्यात्मक जरूरतों (दैनिक आपूर्ति, गुणवत्ता नियंत्रण) और वैचारिक अनिवार्यताओं (शाही प्रतिष्ठा, सांस्कृतिक संश्लेषण, शक्ति प्रदर्शन) दोनों के जटिल प्रतिबिंब थे। वे एक केंद्रीकृत साम्राज्य के प्रतीक थे जो अपनी भव्यता और नियंत्रण के माध्यम से अपनी वैधता स्थापित करता था।

#### (d)

यह कथन कि "सिख धर्म के सिद्धांत इस्लामी और भारतीय (इंडिक) धार्मिक विश्वासों एवं प्रथाओं के सामंजस्यपूर्ण मिश्रण का प्रतिनिधित्व करते हैं," काफी हद तक सटीक है। 15वीं शताब्दी में गुरु नानक

देव जी द्वारा स्थापित सिख धर्म, अपने मूल सिद्धांतों में, उस समय के सामाजिक और धार्मिक परिदृश्य में प्रचलित दोनों प्रमुख धार्मिक परंपराओं - हिंदू धर्म (भारतीय/इंडिक) और इस्लाम - के सर्वोत्तम तत्वों का संश्लेषण प्रतीत होता है।

### हिंदू/भारतीय (इंडिक) परंपराओं से सामंजस्य

सिख धर्म ने भारतीय धार्मिक परंपराओं से कई प्रमुख अवधारणाओं को आत्मसात किया:

- **भक्ति आंदोलन का प्रभाव:** सिख धर्म की जड़ें उत्तर भारतीय भक्ति आंदोलन में निहित हैं। गुरु नानक और बाद के गुरुओं ने एक व्यक्तिगत ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति पर जोर दिया, जो भक्ति परंपरा का मूल तत्व था।
- **कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत:** सिख धर्म हिंदू धर्म के कर्म (कर्मों का सिद्धांत) और पुनर्जन्म (आवागमन) के केंद्रीय सिद्धांतों को स्वीकार करता है। मुक्ति (मोक्ष) को इस पुनर्जन्म के चक्र से बाहर निकलने के रूप में देखा जाता है।
- **माया की अवधारणा:** सिख धर्म में 'माया' (सांसारिक भ्रम) की अवधारणा भी भारतीय दर्शन, विशेषकर वेदांत से ली गई है।
- **गुरु की परंपरा:** सिख धर्म में गुरु (शिक्षक/आध्यात्मिक मार्गदर्शक) की सर्वोच्च स्थिति और महत्व भारतीय परंपरा में गुरु-शिष्य परंपरा का ही विस्तार है।
- **नाम जपना (प्रार्थना):** नाम जपने या ईश्वर के नाम का जाप करने की प्रथा भक्ति परंपरा के 'नामस्मरण' के समान है।

### इस्लामी विश्वासों से सामंजस्य

सिख धर्म ने इस्लाम के कई मूलभूत सिद्धांतों को भी अपने में शामिल किया:

- **सख्त एकेश्वरवाद:** सिख धर्म एक ईश्वर ("एक ओंकार") में दृढ़ विश्वास रखता है, जो निराकार, सर्वव्यापी और शाश्वत है। यह अवधारणा हिंदू बहुदेववाद के विपरीत है और इस्लाम के सख्त एकेश्वरवाद के बहुत करीब है।
- **मूर्ति पूजा का खंडन:** सिख धर्म में मूर्ति पूजा, कर्मकांड और अनावश्यक अनुष्ठानों का पूरी तरह से खंडन किया गया है, जो इस्लाम के मूल सिद्धांतों के अनुरूप है।
- **सामाजिक समानता:** सिख धर्म जाति व्यवस्था का पूर्ण खंडन करता है और मानव समानता पर दृढ़ता से जोर देता है। गुरु नानक ने जाति, पंथ या लिंग के आधार पर किसी भी भेदभाव को खारिज कर दिया।
- **भाईचारा और सेवा:** 'वंद चखना' (अपनी कमाई साझा करना) और 'सेवा' (निस्वार्थ सेवा) की सिख अवधारणाएं इस्लामी 'ज़कात' और सामुदायिक भाईचारे के विचारों के साथ समानता रखती हैं।

### सामंजस्यपूर्ण मिश्रण

सिख धर्म इन तत्वों का केवल एक संग्रह नहीं है, बल्कि एक अनूठा और सामंजस्यपूर्ण संश्लेषण है। गुरुओं ने दोनों धर्मों की रूढ़िवादिता और अंधविश्वासों को खारिज कर दिया और एक नए, सरल और सार्वभौमिक मार्ग का प्रस्ताव रखा:

- उन्होंने एक नए समुदाय (पंथ) की स्थापना की, जिसकी अपनी पवित्र पुस्तक (गुरु ग्रंथ साहिब) और संस्थाएं (गुरुद्वारा, लंगर) थीं।
- यह मिश्रण उस समय की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों में शांति, समानता और सार्वभौमिक भाईचारे को बढ़ावा देने का एक सचेत प्रयास था।

संक्षेप में, सिख धर्म एक स्वतंत्र और विशिष्ट धर्म है, लेकिन इसके सिद्धांत निश्चित रूप से इस्लामी एकेश्वरवाद और भारतीय भक्ति परंपराओं के कुछ पहलुओं से समानता रखते हैं, जो इसे एक अनूठी पहचान देते हैं।

### (e)

मुगल युग में बारूद के आगमन ने भारत में युद्ध के तरीके को मौलिक रूप से बदल दिया, जो पानीपत की पहली लड़ाई (1526) में बाबर की जीत से स्पष्ट हुआ, जहाँ बारूद और तोपों ने पारंपरिक युद्ध शैली (घुड़सवार सेना और तीरंदाजी) को अप्रचलित कर दिया। इससे युद्ध में रक्षात्मक किलेबंदी की जगह नई संरचनाओं का निर्माण हुआ और युद्ध की रणनीति में घुड़सवार सेना के साथ-साथ तोपखाने का संयोजन प्रमुख हो गया।

#### बारूद के प्रभाव

- **तोपखाने का उदय:** बाबर ने पानीपत की लड़ाई में तोपखाने और बारूदी हथियारों का प्रभावी ढंग से इस्तेमाल किया, जिससे इब्राहिम लोदी की सेना हार गई।
- **सैन्य रणनीति में बदलाव:** मुगलों ने अपनी पारंपरिक युद्ध तकनीकों में बारूद को शामिल किया। उन्होंने पैदल सेना, घुड़सवार सेना और तोपखाने को मिलाकर एक शक्तिशाली सेना बनाई।
- **रसद और संसाधनों का महत्व:** बारूद और तोपों के लिए अधिक संसाधन और वित्त की आवश्यकता होती थी, जिससे केवल बड़े और शक्तिशाली राज्य ही प्रभावी ढंग से युद्ध कर सकते थे।
- **प्रभावी किलेबंदी:** बारूद के कारण पारंपरिक किले कमजोर हो गए, और नई रक्षात्मक संरचनाओं का निर्माण आवश्यक हो गया।
- **युद्ध में बारूद का व्यापक उपयोग:** पानीपत के बाद से बारूद का भारत में युद्धों में बड़े पैमाने पर इस्तेमाल होने लगा।

#### मुगल युद्ध का नया चरित्र

पहलू	पारंपरिक युद्ध	बारूद के साथ मुगल युद्ध
मुख्य शक्ति	हाथी, तलवार, धनुष	तोपखाने, बंदूकें, बारूद
किले पर आक्रमण	लंबी घेराबंदी	तोपखाने से सीधे ध्वंस
युद्ध रणनीति	नज़दीकी टकराव	दूरी से प्रहार, संरचनात्मक रणनीति

राजनीतिक प्रभाव	सीमित क्षेत्रीय नियंत्रण	केन्द्रित और व्यापक नियंत्रण
-----------------	--------------------------	------------------------------

### निष्कर्ष

मुगल युग में बारूद और आग्नेयास्त्रों के आगमन ने युद्ध के पारंपरिक स्वरूप को पूरी तरह बदल दिया। इससे सैन्य संरचना, रणनीति, किलेबंदी, और राजनीतिक सत्ता की केंद्रीकरण की प्रक्रिया प्रभावित हुई। अब युद्ध केवल वीरता और हाथियों की ताकत पर आधारित नहीं था, बल्कि टेक्नोलॉजी, रणनीति और राज्य की आर्थिक शक्ति निर्णायक तत्व बन गए।

### Q.6.

(a) राजा टोडरमल द्वारा शुरू की गई "ज़ब्ती" या "दहसाला" राजस्व प्रणाली अपनी अभिनव संरचनात्मक विशेषताओं के कारण भारत में भू-राजस्व निर्धारण में एक महत्वपूर्ण मानकीकरण लाने में अत्यधिक सफल रही।

टोडरमल की राजस्व प्रणाली की संरचनात्मक विशेषताएँ

टोडरमल प्रणाली की मुख्य संरचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित थीं:

- **भूमि की व्यवस्थित माप:** इस प्रणाली का आधार भूमि का व्यवस्थित और सटीक सर्वेक्षण था। माप के लिए पहले इस्तेमाल की जाने वाली रस्सी के बजाय लोहे के छल्लों से जुड़े बाँस की जरीब का इस्तेमाल किया गया, जिससे माप में सटीकता आई और मानवीय हेरफेर की गुंजाइश कम हो गई।
- **भूमि का वर्गीकरण:** उत्पादकता के आधार पर भूमि को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया:
  - **पोलज (Polaj):** वह भूमि जिस पर हर साल खेती होती थी।
  - **परती (Parauti):** वह भूमि जिस पर नियमित खेती के लिए एक या दो साल के अंतराल पर जुताई होती थी।
  - **छाछर (Chachar):** वह भूमि जिस पर तीन या चार साल के अंतराल पर खेती होती थी।
  - **बंजर (Banjar):** सबसे खराब गुणवत्ता वाली भूमि जिस पर पाँच या अधिक वर्षों में खेती होती थी।
  - प्रत्येक श्रेणी के लिए राजस्व की दरें अलग-अलग निर्धारित की गईं।
- **दहसाला (10-वर्षीय औसत) प्रणाली:** 1570 से 1580 तक की दस वर्षों की अवधि में विभिन्न फसलों की औसत उपज और स्थानीय कीमतों का सावधानीपूर्वक सर्वेक्षण किया गया। इसी दस-वर्षीय औसत के आधार पर अगले दस वर्षों के लिए राजस्व की दरें निर्धारित की गईं।
- **राजस्व का निर्धारण:** औसत उपज का एक-तिहाई (1/3) हिस्सा राज्य के हिस्से के रूप में निर्धारित किया गया था।
- **नकद भुगतान:** किसानों के पास राजस्व का भुगतान नकद में करने का विकल्प था, जो राज्य के लिए संग्रह और भंडारण की समस्याओं को कम करता था।

- **दस्तूर-उल-अमल (नकद दरें):** प्रत्येक फसल के लिए नकद राजस्व दरें निर्धारित की गईं और इन दरों की सूची को 'दस्तूर-उल-अमल' या 'दस्तूर' कहा जाता था।

### मानकीकरण में सफलता का मूल्यांकन

टोडरमल की प्रणाली भू-राजस्व निर्धारण में मानकीकरण लाने में **अत्यधिक सफल** रही:

- **एकसमानता:** इस प्रणाली ने पूरे साम्राज्य (जहाँ इसे लागू किया गया था, जैसे लाहौर से इलाहाबाद, मालवा और गुजरात) में मूल्यांकन और कर संग्रह के लिए एक समान और पारदर्शी ढांचा प्रदान किया। मनमाने मूल्यांकन और स्थानीय अधिकारियों द्वारा शोषण की संभावना कम हो गई।
- **सटीकता:** वैज्ञानिक सर्वेक्षण और भूमि वर्गीकरण ने सुनिश्चित किया कि कर भूमि की वास्तविक उत्पादकता के अनुसार लगाया जाए, जिससे किसानों पर अनावश्यक बोझ नहीं पड़ा।
- **स्थिरता:** दस-वर्षीय औसत के आधार पर दरें निर्धारित करने से राजस्व संग्रह में स्थिरता आई और यह प्रणाली 10 वर्षों के लिए वैध रही, जिससे अनिश्चितता कम हुई।
- **प्रशासनिक दक्षता:** स्पष्ट दस्तूरों और मानकीकृत प्रक्रियाओं के कारण मुगल प्रशासन के लिए राजस्व का प्रबंधन और संग्रह अधिक कुशल हो गया।

संक्षेप में, टोडरमल की राजस्व प्रणाली ने मनमाने कर निर्धारण को समाप्त कर, एक वैज्ञानिक, मानकीकृत और कुशल प्रणाली स्थापित की, जो मुगल साम्राज्य के कृषि प्रशासन की नींव बन गई और भविष्य के राजस्व प्रशासन के लिए एक मॉडल के रूप में काम किया।

(b) जियाउद्दीन बरनी की प्रसिद्ध रचना "**फतवा-ए-जहाँदारी**" को अक्सर दिल्ली सल्तनत के शासन का एक तथ्यात्मक विवरण मानने के बजाय, समकालीन राजनीतिक और धार्मिक प्रथाओं के प्रति बरनी के गहरे असंतोष और निराशा का प्रतीक माना जाता है। यह एक ऐतिहासिक कृति से अधिक एक **नैतिक और राजनीतिक वसीयतनामा** है, जिसमें उसने अपने समय की वास्तविकताओं पर **विलाप (आक्षेप)** किया है।

इस कथन की पुष्टि निम्नलिखित बिंदुओं से होती है:

1. **आदर्शवादी दृष्टिकोण:** बरनी ने "फतवा-ए-जहाँदारी" में एक आदर्श शासक और शासन प्रणाली की अपनी परिकल्पना प्रस्तुत की, जो उस समय की वास्तविकताओं से अक्सर भिन्न थी। वह शासकों के लिए एक सैद्धांतिक मार्गदर्शिका देना चाहता था, न कि सल्तनत के शासन का यथार्थवादी चित्रण करना।
2. **व्यक्तिगत अनुभव और निराशा:** बरनी ने मुहम्मद बिन तुगलक के दरबार में एक महत्वपूर्ण पद पर कार्य किया, लेकिन बाद में उसे पद से हटा दिया गया और उसने अपना जीवन कठिनाई में बिताया। "फतवा-ए-जहाँदारी" उसकी बाद की रचना मानी जाती है, जब वह सत्ता से बाहर था। इस व्यक्तिगत अनुभव और निराशा ने उसके दृष्टिकोण को प्रभावित किया हो सकता है, जिससे उसकी रचना में एक विशिष्ट पूर्वाग्रह आ गया।

3. **सामयिक राजनीतिक संदर्भ:** बरनी अपने समय की कुछ राजनीतिक और प्रशासनिक नीतियों से असहमत था। उसकी रचना को उस समय की कुछ प्रथाओं के प्रति उसकी प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है, बजाय इसके कि यह एक निष्पक्ष ऐतिहासिक विवरण हो।

4. **लेखन का उद्देश्य:** "फतवा-ए-जहाँदारी" का उद्देश्य केवल इतिहास बताना नहीं था, बल्कि शासकों को बरनी के अनुसार सही मार्ग दिखाना था। इसमें उपदेशात्मक और सलाहकारी तत्व प्रमुख हैं, जो इसे एक ऐतिहासिक विवरण से अधिक एक राजनीतिक और नैतिक ग्रंथ बनाते हैं।

निष्कर्ष रूप में, "फतवा-ए-जहाँदारी" को बरनी के व्यक्तिगत विचारों, अनुभवों और आदर्शों से प्रभावित एक रचना के रूप में देखा जा सकता है, जिसमें समकालीन शासन पद्धतियों के प्रति उसकी आलोचना और निराशा व्यक्त होती है। यह दिल्ली सल्तनत के शासन का एक व्यापक और निष्पक्ष ऐतिहासिक विवरण होने के बजाय, एक विशिष्ट दृष्टिकोण से लिखा गया एक "विलाप" या आक्षेप अधिक प्रतीत होता है।

जियाउद्दीन बरनी की रचना "फतवा-ए-जहाँदारी" (विश्व शासन पर आदेश) को दिल्ली सल्तनत का वस्तुनिष्ठ या तथ्यात्मक विवरण नहीं माना जा सकता, बल्कि यह मुख्य रूप से **आदर्श इस्लामी राजत्व पर एक उपदेशात्मक ग्रंथ** है, जो समकालीन शासकों की नीतियों से बरनी के मोहभंग और विलाप को दर्शाता है।

#### "फतवा-ए-जहाँदारी" एक विलाप (आक्षेप) के रूप में

बरनी ने यह पुस्तक अपने जीवन के उत्तरार्ध में, सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के दरबार से निष्कासित होने और पक्ष खोने के बाद लिखी थी। इस कारण, इसमें उनका व्यक्तिगत मोहभंग, कुंठा और तत्कालीन शासन के प्रति आक्षेप स्पष्ट रूप से झलकता है। इसे विलाप (आक्षेप) कहने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

- **आदर्श बनाम वास्तविक स्थिति:** बरनी ने इसमें एक "आदर्श मुस्लिम शासक" (सुल्तान) के कर्तव्यों और गुणों का वर्णन किया है, जिसका मुख्य उद्देश्य शरियत (इस्लामी कानून) को सख्ती से लागू करना और इस्लाम की सर्वोच्चता स्थापित करना था। यह आदर्श उनके समय के शासकों, विशेषकर मुहम्मद बिन तुगलक और यहाँ तक कि फिरोजशाह तुगलक की व्यवहारिक (धर्मनिरपेक्ष) नीतियों के बिल्कुल विपरीत था।
- **गैर-इस्लामी प्रथाओं की आलोचना:** बरनी ने सल्तनत में प्रचलित कई ऐसी प्रथाओं की कड़ी आलोचना की जो इस्लामी कानून के अनुसार नहीं थीं। उन्होंने धर्मनिरपेक्ष कानून (ज़वाबित) के उपयोग, गैर-मुसलमानों (विशेषकर हिंदुओं) के प्रति सुल्तानों की सहिष्णुता, और निम्न-जन्म के लोगों को ऊँचे पदों पर नियुक्त करने पर गहरा दुख व्यक्त किया।
- **व्यक्तिगत पूर्वाग्रह और निराशा:** बरनी का मानना था कि सुल्तानों ने सच्चे इस्लामी मार्ग को छोड़ दिया है, जिससे सल्तनत में नैतिक पतन हो रहा है। उन्होंने यहां तक तर्क दिया कि यदि कोई मुस्लिम राजा हिंदुओं से केवल जजिया और खराज लेकर संतुष्ट है, तो उसमें और एक हिंदू शासक में कोई अंतर नहीं है। यह कथन उनके गहरे धार्मिक पूर्वाग्रह और समकालीन नीतियों के प्रति निराशा को उजागर करता है।

- **उपदेशात्मक और अनुदेशात्मक प्रकृति:** यह पुस्तक इतिहास का कालानुक्रमिक विवरण नहीं है (जैसा कि उनकी एक अन्य पुस्तक "तारीख-ए-फिरोजशाही" है), बल्कि यह शासकों के लिए एक नैतिक और राजनीतिक नियमावली है, जिसमें उन्हें धार्मिक योग्यता और ईश्वरीय कृपा अर्जित करने के लिए सलाह दी गई है। यह प्रकृति इसे वस्तुनिष्ठ विवरण से अधिक एक आक्षेप बनाती है।

### निष्कर्ष

"फतवा-ए-जहाँदारी" में बरनी ने अपने आदर्शवादी राजनीतिक विचारों को प्रस्तुत किया, जो उस समय दिल्ली सल्तनत की वास्तविकताओं से बहुत दूर थे। यह पुस्तक समकालीन नीतियों के प्रति उनकी तीव्र अस्वीकृति और एक सख्त इस्लामी राज्य के उनके स्वप्न का विलापपूर्ण चित्रण है। इसलिए, इसे सल्तनत के सही विवरण के बजाय, एक निराश दरबारी और कट्टर विचारक के आक्षेप और राजनीतिक दर्शन के रूप में समझना अधिक उचित है।

(c) मुगल काल (16वीं से 18वीं शताब्दी) को हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है, क्योंकि इस दौरान इसे अभूतपूर्व शाही संरक्षण मिला और भक्ति व सूफी आंदोलनों के प्रभाव से साहित्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया।

### मुगल संरक्षण में हिंदी साहित्य का विकास

मुगल शासकों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई:

- **अकबर का काल (स्वर्ण युग):** अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति और साहित्य में गहरी रुचि ने हिंदी कवियों को दरबार में स्थान दिया।
  - **दरबारी कवि:** अब्दुरहीम खानखाना (रहीम), राजा मान सिंह, बीरबल और टोडरमल स्वयं उच्च कोटि के हिंदी कवि थे।
  - **अनुवाद विभाग:** अकबर ने एक 'अनुवाद विभाग' की स्थापना की जहाँ संस्कृत, अरबी और फ़ारसी ग्रंथों का फ़ारसी में अनुवाद हुआ, जिससे विचारों का आदान-प्रदान बढ़ा और हिंदी साहित्य को समृद्ध करने वाली सामग्री उपलब्ध हुई।
  - **साहित्यिक वातावरण:** अकबर के दरबार में बने साहित्यिक वातावरण ने कई बाहरी कवियों को भी प्रेरणा दी।
- **जहाँगीर और शाहजहाँ का काल:** इन शासकों ने भी साहित्य और कला को संरक्षण देना जारी रखा। जहाँगीर की तुजुक-ए-जहाँगीरी में हिंदी कवियों का उल्लेख है। शाहजहाँ के काल में केशवदास और सुंदरदास जैसे रीतिकालीन कवियों ने महत्वपूर्ण रचनाएँ कीं।
- **अन्य दरबारी समर्थन:** मुगल राजकुमारों और मनसबदारों ने भी स्थानीय कवियों को संरक्षण दिया।

### भक्ति और सूफी आंदोलनों का प्रभाव

मुगल काल में हिंदी साहित्य का मुख्य प्राण तत्व भक्ति और सूफी आंदोलनों से आया। इन आंदोलनों ने साहित्य को नई दिशा और गहराई दी:

- **भक्ति आंदोलन का प्रभाव:**

- **दो धाराएँ:** भक्ति साहित्य दो मुख्य धाराओं - सगुण (ईश्वर के साकार रूप की पूजा) और निर्गुण (ईश्वर के निराकार रूप की पूजा) - में विकसित हुआ।
- **सगुण भक्ति (रामभक्ति और कृष्णभक्ति):** तुलसीदास की "रामचरितमानस" (अवधी भाषा में) ने हिंदी साहित्य को एक महान महाकाव्य दिया। **सूरदास, मीराबाई** और **रसखान** ने ब्रजभाषा में कृष्ण की लीलाओं पर आधारित अद्भुत पद रचे। इस साहित्य ने जनमानस को गहराई से प्रभावित किया।
- **निर्गुण भक्ति:** **कबीरदास, नानक,** और **दादू दयाल** जैसे संतों ने निर्गुण ईश्वर की अवधारणा को बढ़ावा दिया, और अपनी साखियों व सबदों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया।
- **सूफी आंदोलन का प्रभाव:**
  - **प्रेममार्गी शाखा:** सूफी संतों ने प्रेम कहानियों के माध्यम से ईश्वर की एकता का संदेश दिया। **मलिक मुहम्मद जायसी** की "पद्मावत" (अवधी में), **कुतुबन** की "मृगावती", और **मंझन** की "मधुमालती" प्रमुख सूफी काव्य हैं। इन रचनाओं ने हिंदू और मुस्लिम संस्कृतियों को पाटने का काम किया।

संक्षेप में, मुगल संरक्षण ने हिंदी साहित्य के लिए एक अनुकूल वातावरण प्रदान किया, जबकि भक्ति और सूफी आंदोलनों ने इसे विषय-वस्तु, विविधता और भावनात्मक गहराई प्रदान की, जिससे हिंदी साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ।

मुगल संरक्षण में हिंदी साहित्य का उल्लेखनीय विकास हुआ, विशेषकर अकबर के शासनकाल में, हालांकि मुगलों की आधिकारिक दरबारी भाषा फ़ारसी थी। इस विकास को मुख्य रूप से उस समय सक्रिय भक्ति और सूफी आंदोलनों ने गहराई से प्रभावित और पोषित किया।

मुगल संरक्षण में हिंदी साहित्य का विकास

मुगल सम्राटों ने प्रत्यक्ष रूप से फ़ारसी साहित्य को अधिक संरक्षण दिया, लेकिन कई सम्राटों और उनके दरबारियों ने हिंदी साहित्य में भी गहरी रुचि दिखाई और इसे बढ़ावा दिया।

- **अकबर का काल (हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग):** अकबर की धार्मिक सहिष्णुता और उदार नीति ने हिंदी साहित्य के विकास के लिए एक आदर्श वातावरण प्रदान किया। उनके दरबार में कई हिंदी कवि और विद्वान थे।
  - **राजा बीरबल, मान सिंह, और टोडरमल** स्वयं कवि थे और हिंदी साहित्य के संरक्षक थे।
  - **अब्दुरहीम खानखाना** एक उच्च पदस्थ दरबारी और फ़ारसी तथा हिंदी दोनों के महान कवि थे। उनके हिंदी दोहे आज भी लोकप्रिय हैं।
  - अकबर ने कई संस्कृत ग्रंथों का फ़ारसी में अनुवाद भी करवाया, जिससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ा।
- **जहाँगीर और शाहजहाँ का काल:** इन सम्राटों ने भी हिंदी कवियों को संरक्षण देना जारी रखा।
  - जहाँगीर ने एक हिंदी कवि की रचना से प्रसन्न होकर उसे एक हाथी इनाम में दिया था।

- शाहजहाँ के दरबार में कवींद्राचार्य सरस्वती और पंडित जगन्नाथ जैसे प्रसिद्ध कवि थे, जिन्होंने संस्कृत और ब्रजभाषा में रचनाएँ कीं।

- **अन्य दरबारी कवि:** इस काल में हिंदी के कई महत्वपूर्ण कवि हुए जिन्होंने दरबार से स्वतंत्र रहकर भी साहित्य की रचना की, लेकिन उन्हें सामाजिक और कभी-कभी शाही समर्थन भी मिला।

भक्ति और सूफी आंदोलनों का प्रभाव

भक्ति और सूफी आंदोलनों ने मुगल काल के हिंदी साहित्य की विषयवस्तु, शैली और लोकप्रियता को सबसे अधिक प्रभावित किया।

### 1. भक्ति आंदोलन का प्रभाव:

भक्ति आंदोलन इस काल में हिंदी साहित्य के विकास का मुख्य प्रेरक बल था।

- **विषय-वस्तु:** साहित्य मुख्य रूप से ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत भक्ति और प्रेम पर केंद्रित था। इसने दो प्रमुख काव्य धाराओं को जन्म दिया:
  - **सगुण भक्ति धारा:** भगवान के साकार रूप की पूजा पर केंद्रित।
    - तुलसीदास ने अवधी भाषा में "रामचरितमानस" की रचना की, जो आज भी हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण कृति है और घर-घर में पढ़ी जाती है।
    - सूरदास ने ब्रजभाषा में भगवान कृष्ण की लीलाओं का वर्णन "सूरसागर" में किया।
  - **निर्गुण भक्ति धारा:** ईश्वर के निराकार रूप की पूजा पर केंद्रित, सामाजिक समानता और आडंबरों के विरोध पर जोर दिया।
    - कबीर और अन्य संतों ने दोहे और साखियाँ लिखीं, जो आम लोगों के बीच बहुत लोकप्रिय हुईं।
- **भाषा का मानकीकरण:** इन कवियों ने संस्कृत की जगह आम लोगों की भाषाओं - अवधी और ब्रजभाषा - का इस्तेमाल किया, जिससे हिंदी साहित्य की लोकप्रियता बढ़ी और उसका विकास हुआ।

### 2. सूफी आंदोलन का प्रभाव:

सूफी संतों ने हिंदू-मुस्लिम एकता और सार्वभौमिक प्रेम का संदेश दिया, जिसने हिंदी साहित्य में एक अनूठी धारा को जन्म दिया।

- **प्रेम-मार्गी काव्य:** सूफी कवियों ने मसनवी शैली में हिंदी (अवधी) में प्रेम कहानियाँ लिखीं, जिनमें हिंदू पात्रों और भारतीय परिवेश का उपयोग किया गया।
- **मलिक मुहम्मद जायसी** ने "पद्मावत" की रचना की, जो अवधी साहित्य की एक उत्कृष्ट कृति है। इस तरह के साहित्य ने एक समृद्ध सांस्कृतिक संश्लेषण को बढ़ावा दिया।

संक्षेप में, मुगल काल में हिंदी साहित्य का विकास मुख्य रूप से भक्ति और सूफी आंदोलनों के कारण हुआ, जिन्होंने इसे समृद्ध विषय-वस्तु और आम लोगों की भाषाएँ प्रदान कीं। हालांकि मुगलों की

राजभाषा फ़ारसी थी, लेकिन कई सम्राटों और दरबारियों द्वारा दिए गए संरक्षण ने इस साहित्य को फलने-फूलने में मदद की।

**Q.7.**

(a) पुर्तगाली समुद्री शक्ति ने 16वीं शताब्दी में हिंद महासागर के व्यापार के स्वरूप को महत्वपूर्ण रूप से बाधित और परिवर्तित कर दिया। अपने शक्तिशाली नौसैनिक बेड़े और आक्रामक नीतियों के माध्यम से, पुर्तगालियों ने सदियों पुराने खुले एशियाई व्यापार नेटवर्क को चुनौती दी और एक नई, नियंत्रित तथा एकाधिकारवादी व्यापार प्रणाली स्थापित करने का प्रयास किया।

इस समीक्षा के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

पारंपरिक व्यापार स्वरूप में व्यवधान

16वीं शताब्दी से पहले, हिंद महासागर व्यापार एक खुला और बहुराष्ट्रीय नेटवर्क था, जिसमें भारतीय, अरब, फ़ारसी, अफ़्रीकी और चीनी व्यापारी शांतिपूर्वक सहयोग और प्रतिस्पर्धा करते थे। पुर्तगालियों ने इस स्वरूप को कई तरह से बाधित किया:

- **नौसैनिक प्रभुत्व और जबरन नियंत्रण:** पुर्तगाली जहाज अन्य एशियाई जहाजों की तुलना में बेहतर तोपखाने और सैन्य क्षमताओं से लैस थे। उन्होंने अपनी नौसैनिक शक्ति का उपयोग करके समुद्री मार्गों पर जबरन नियंत्रण स्थापित कर लिया।
- **"कार्टाज़" (Cartaz) प्रणाली:** पुर्तगालियों ने एक लाइसेंसिंग प्रणाली शुरू की, जिसे "कार्टाज़" कहा जाता था। हिंद महासागर में किसी भी एशियाई जहाज को व्यापार करने के लिए पुर्तगाली अधिकारियों से यह पास लेना अनिवार्य था। इस पास के बिना चलने वाले जहाजों को जब्त कर लिया जाता था, उन पर हमला किया जाता था, या डुबो दिया जाता था। यह प्रणाली पारंपरिक मुक्त व्यापार के लिए एक बड़ा व्यवधान थी।
- **प्रमुख बंदरगाहों पर नियंत्रण:** पुर्तगालियों ने गोवा, दमन, दीव, कोचीन और मलक्का जैसे रणनीतिक तटीय शहरों और बंदरगाहों पर कब्जा कर लिया। इन ठिकानों से उन्होंने न केवल व्यापार मार्गों की निगरानी की, बल्कि मसालों और अन्य वस्तुओं के व्यापार पर भी एकाधिकार स्थापित किया।
- **व्यापार का सैन्यीकरण:** जहाँ पारंपरिक व्यापार शांतिपूर्ण वाणिज्यिक लेनदेन पर आधारित था, वहीं पुर्तगालियों ने व्यापार को सैन्य बल के साथ जोड़ दिया। उन्होंने किलों का निर्माण किया, नौसैनिक गश्त लगाई, और प्रतिद्वंद्वियों को डराने के लिए हिंसा का सहारा लिया।

**व्यापार के स्वरूप में परिवर्तन**

पुर्तगाली हस्तक्षेप ने व्यापार के स्वरूप में संरचनात्मक परिवर्तन किए:

- **एकाधिकार की स्थापना:** पुर्तगालियों ने काली मिर्च, दालचीनी और अन्य मूल्यवान मसालों के व्यापार पर शाही एकाधिकार स्थापित करने का प्रयास किया, जिससे पारंपरिक व्यापारियों की भूमिका कम हो गई।

- **राजस्व के नए स्रोत:** "कार्टाज़" प्रणाली ने पुर्तगाली ताज के लिए राजस्व का एक नया और जबरन स्रोत बनाया, जबकि स्थानीय शासकों और व्यापारियों के पारंपरिक राजस्व को चोट पहुँचाई।
- **व्यापार मार्गों का पुनर्निर्देशन:** कुछ पारंपरिक मार्गों को पुर्तगाली नियंत्रण वाले बंदरगाहों की ओर मोड़ दिया गया, जिससे पुराने व्यापारिक केंद्र जैसे कालीकट और बाद में गुजरात के कुछ बंदरगाहों का महत्व कम हो गया।

### निष्कर्ष

16वीं शताब्दी में पुर्तगाली समुद्री शक्ति ने निस्संदेह हिंद महासागर में व्यापार के सदियों पुराने स्वरूप को बाधित किया। उन्होंने पारंपरिक सहकारी व्यापार नेटवर्क को एक सैन्यीकृत और एकाधिकारवादी प्रणाली से बदल दिया, जिससे एशियाई व्यापारियों की स्वतंत्रता पर गंभीर अंकुश लग गए। हालांकि वे पूरे हिंद महासागर पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित नहीं कर सके, लेकिन उनके आगमन ने इस क्षेत्र में यूरोपीय औपनिवेशिक प्रभुत्व की नींव रखी और व्यापार के स्वरूप को अपरिवर्तनीय रूप से बदल दिया

(b) अकबर की राजपूत नीति को अक्सर उनकी दूरदर्शिता, धार्मिक सहिष्णुता और साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा का परिणाम माना जाता है। हालांकि, यह विश्लेषण करना महत्वपूर्ण है कि इस नीति का निर्माण काफी हद तक **मुगल दरबार के भीतर सक्रिय विभिन्न गुटीय राजनीतिक विचारों और दबावों द्वारा भी प्रभावित** हुआ था। अकबर की नीति इन प्रतिस्पर्धी विचारों के बीच एक संतुलन स्थापित करने का प्रयास थी।

### मुगल दरबार के गुटीय राजनीतिक विचार

अकबर के शुरुआती शासनकाल में (1556-1562), दरबार विभिन्न गुटों में बंटा हुआ था:

- **ईरानी/शिया और पुरानी तुर्क गुट:** ये गुट पारंपरिक रूप से राजपूतों के प्रति अविश्वास और शत्रुता का भाव रखते थे। उनके विचार में राजपूत विद्रोही और अविश्वसनीय थे, और उनसे सैन्य बल या अधीनता के माध्यम से निपटा जाना चाहिए। **बैरम खान**, जो अकबर के संरक्षक थे, इसी सोच का प्रतिनिधित्व करते थे।
- **मध्यमार्गी और व्यावहारिक विचारक:** कुछ दरबारी, विशेषकर अकबर के युवा होने पर उनकी धाय माँ **माहम अंगा** और उनके परिवार का गुट (जिसे 'पेटीकोट सरकार' भी कहा जाता था), अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण रखते थे। वे समझते थे कि केवल सैन्य शक्ति के आधार पर एक विशाल साम्राज्य को बनाए रखना मुश्किल है और स्थानीय शक्तियों, विशेषकर राजपूतों के सहयोग की आवश्यकता होगी।
- **अकबर की अपनी दूरदर्शिता:** जैसे-जैसे अकबर बड़ा हुआ, उसने अपने अनुभव से सीखा कि राजपूतों के साथ केवल बल प्रयोग की नीति टिकाऊ नहीं है। उसने देखा कि दिल्ली सल्तनत और हुमायूँ को राजपूतों के प्रतिरोध के कारण कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

### नीति निर्माण में गुटीय राजनीति का प्रभाव

अकबर की राजपूत नीति इन गुटीय दबावों की प्रतिक्रिया और संश्लेषण थी:

- **बैरम खान के पतन के बाद परिवर्तन:** 1560 में बैरम खान के पतन और 1562 में हरम दल के प्रभाव के समाप्त होने के बाद, अकबर ने स्वतंत्र रूप से निर्णय लेना शुरू किया। इस समय उसने अपनी नीति में बड़ा बदलाव किया।
- **साम्राज्य का विस्तार और स्थिरता:** अकबर की मुख्य चिंता साम्राज्य का विस्तार और स्थिरता थी। राजपूत एक प्रमुख सैन्य शक्ति थे। गुटीय विचार राजपूतों को दुश्मन के रूप में देखते थे, लेकिन अकबर ने महसूस किया कि उन्हें सहयोगी बनाना साम्राज्य के लिए अधिक फायदेमंद होगा।
- **कूटनीति और विवाह संबंध:** गुटीय विचारों के विपरीत, अकबर ने कूटनीति और विवाह संबंधों का रास्ता अपनाया। 1562 में आमेर के राजा भारमल की बेटी से विवाह, बिना जबरन धर्मांतरण के, एक क्रांतिकारी कदम था। यह कदम निश्चित रूप से कट्टरपंथी गुटों को रास नहीं आया होगा, लेकिन अकबर ने अपनी संप्रभुता स्थापित की।
- **मनसबदारी प्रणाली में शामिल करना:** अकबर ने राजपूत राजाओं और सरदारों को मुगल मनसबदारी प्रणाली में उच्च पद दिए। उन्हें न केवल अपनी सेनाएं बनाए रखने की अनुमति दी गई, बल्कि धार्मिक स्वतंत्रता और आंतरिक स्वायत्तता भी दी गई। यह कदम पुराने अभिजात वर्ग (ईरानी, तुर्क) की शक्ति को संतुलित करने का भी एक तरीका था, जो अक्सर अकबर के लिए खतरा पैदा करते थे।

### निष्कर्ष

अकबर की राजपूत नीति केवल एक व्यक्तिगत निर्णय नहीं थी, बल्कि यह मुगल दरबार के भीतर चल रहे शक्ति संघर्षों और विभिन्न राजनीतिक विचारों द्वारा निर्मित एक जटिल रणनीति थी। राजपूतों के साथ गठबंधन करके, अकबर ने अपने साम्राज्य को मजबूत किया और साथ ही दरबार के उस गुट को दरकिनार कर दिया जो केवल सैन्य अधीनता की वकालत करता था। इस प्रकार, गुटीय राजनीति ने नीति को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(c) मुगलकालीन राजस्व प्रशासन का उत्तर भारत की कृषि संरचना और ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने पर गहरा और मिश्रित प्रभाव पड़ा। इसने कुछ मौजूदा संरचनाओं को जारी रखा, जबकि कई महत्वपूर्ण परिवर्तनों की शुरुआत भी की।

कृषि संरचना पर प्रभाव

मुगल राजस्व प्रशासन ने कृषि संरचना को निम्नलिखित तरीकों से प्रभावित किया:

- **उत्पादन में वृद्धि का दबाव:** उच्च राजस्व मांग (सामान्यतः 1/3 से 1/2 उपज तक) ने किसानों को अधिक उत्पादन करने के लिए प्रेरित किया। इससे कृषि का विस्तार हुआ और अधिक भूमि जुताई के दायरे में आई।
- **नकद अर्थव्यवस्था को बढ़ावा:** "ज़ब्ती" जैसी प्रणालियों और उच्च राजस्व दरों ने किसानों को नकदी फसलों (कपास, गन्ना, नील, अफीम) की खेती करने के लिए मजबूर किया, क्योंकि उन्हें राजस्व का भुगतान नकद में करना होता था। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुद्रीकरण हुआ।

- **भूमि माप और वर्गीकरण:** टोडरमल की "दहसाला" प्रणाली ने भूमि की व्यवस्थित माप और उत्पादकता के आधार पर वर्गीकरण किया। इससे राजस्व निर्धारण में मानकीकरण और कुछ हद तक निष्पक्षता आई, हालांकि इसे हर जगह समान रूप से लागू नहीं किया गया।
- **सिंचाई का विकास:** राजस्व संग्रह की स्थिरता सुनिश्चित करने और कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए राज्य ने कुछ हद तक सिंचाई सुविधाओं (नहरों, कुओं) में निवेश को प्रोत्साहित किया।

ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने पर प्रभाव

राजस्व प्रशासन ने ग्रामीण सामाजिक संरचना को निरंतरित भी किया और परिवर्तित भी:

**निरंतरता:**

- **पारंपरिक पदानुक्रम:** मुगल प्रणाली ने पारंपरिक ग्रामीण अभिजात वर्ग, जैसे ज़मींदारों, मुखियाओं और चौधरीयों के अस्तित्व को स्वीकार किया। इन बिचौलियों का उपयोग राजस्व इकट्ठा करने के लिए किया गया, जिससे ग्रामीण सामाजिक पदानुक्रम और उनकी शक्ति काफी हद तक निरंतर बनी रही।
- **सामुदायिक संरचना:** गाँव की सामुदायिक संरचना (जाति-आधारित कार्य विभाजन, महाजन व्यवस्था) और स्वायत्तता बनी रही, क्योंकि प्रशासन आमतौर पर सीधे व्यक्तिगत किसानों से नहीं, बल्कि गाँव के मुखियाओं के माध्यम से संवाद करता था।
- **महाजनों (साहूकारों) की भूमिका:** नकद राजस्व के दबाव ने किसानों को ऋण लेने के लिए बाध्य किया। इससे ग्रामीण महाजनों की शक्ति और प्रभाव में वृद्धि हुई, जिससे किसानों की उन पर निर्भरता बनी रही।

**परिवर्तन:**

- **आय असमानता में वृद्धि:** राजस्व संग्रह प्रणाली ने ज़मींदारों, जागीरदारों और साहूकारों के हाथों में धन का संकेंद्रण किया। इससे ग्रामीण समाज में आर्थिक असमानता बढ़ी; एक तरफ समृद्ध अभिजात वर्ग था, तो दूसरी तरफ गरीब किसान।
- **किसानों का विस्थापन और अस्थिरता:** उच्च राजस्व मांगों और प्राकृतिक आपदाओं (अकाल, बाढ़) के कारण कई किसान ऋण जाल में फंस गए और अपनी जमीन खो बैठे। इससे कृषि श्रमिकों की एक नई श्रेणी का उदय हुआ और ग्रामीण अस्थिरता बढ़ी।
- **नए अभिजात वर्ग का उदय:** जब पुराने ज़मींदार राजस्व देने में विफल रहे, तो उनके स्थान पर नए लोगों (जैसे राजस्व ठेकेदार या व्यापारी) ने ज़मींदारी अधिकार हासिल कर लिए, जिससे ग्रामीण नेतृत्व में बदलाव आया।

**कृषि संरचना पर प्रभाव**

मुगल राजस्व प्रशासन का प्राथमिक उद्देश्य कृषि अधिशेष का अधिकतम हिस्सा राज्य के लिए प्राप्त करना था, जिसने कृषि संरचना को निम्नलिखित तरीकों से प्रभावित किया:

- **माप और मानकीकरण:** टोडरमल की प्रणाली ने भूमि की व्यवस्थित माप (जरीब का उपयोग करके) और वर्गीकरण को अनिवार्य कर दिया। इसने राजस्व निर्धारण में सटीकता और एकरूपता लाई, जिससे मनमानी वसूली कुछ हद तक कम हुई।

- **कृषि का व्यावसायीकरण (वाणिज्यीकरण):** राज्य ने राजस्व का भुगतान नकद में लेना पसंद किया, जिससे किसानों को बाजार में अपनी उपज बेचने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इसने कपास, नील, गन्ना और तंबाकू जैसी नकदी फसलों की खेती को बढ़ावा दिया, जिससे एक बाजार-उन्मुख कृषि अर्थव्यवस्था का विकास हुआ।
- **सिंचाई और बुनियादी ढांचा:** साम्राज्य ने सड़कों और सराय (विश्राम गृह) जैसे बुनियादी ढांचे में निवेश किया, जिससे व्यापार और वाणिज्य सुविधाजनक हुआ। इसने कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने में मदद की।
- **राजस्व का भारी बोझ:** राजस्व की मांग अक्सर अधिक होती थी (पैदावार का 1/3 से 1/2 तक, और कभी-कभी कुछ क्षेत्रों में 3/4 तक), जिससे किसानों पर भारी दबाव पड़ता था। इस भारी कर बोझ ने किसानों को गरीबी की ओर धकेल दिया और अक्सर उन्हें कर्ज लेने के लिए मजबूर किया।

ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने में निरंतरता एवं परिवर्तन

राजस्व प्रशासन ने ग्रामीण समाज में निरंतरता बनाए रखी, लेकिन साथ ही साथ महत्वपूर्ण परिवर्तन भी लाए:

### निरंतरता (Continuation)

- **पारंपरिक पदानुक्रम:** मुगल प्रणाली ने ज़मींदारों (पारंपरिक भू-धारकों) की स्थिति को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया। उन्हें राजस्व संग्रह में महत्वपूर्ण भूमिका दी गई और उन्हें कमीशन/हिस्सा मिलता रहा। इससे पारंपरिक ग्रामीण अभिजात वर्ग की स्थिति काफी हद तक बनी रही।
- **ग्रामीण आत्मनिर्भरता:** गाँव काफी हद तक आत्मनिर्भर बने रहे, जहाँ किसान, कारीगर और सेवा वर्ग के लोग स्थानीय जरूरतों को पूरा करते थे। मुगल राज्य ने इस बुनियादी ढांचे में सीधे हस्तक्षेप नहीं किया।
- **कृषि मुख्य पेशा:** बहुसंख्यक ग्रामीण आबादी के लिए कृषि ही आजीविका का मुख्य स्रोत बनी रही।

### परिवर्तन (Transformation)

- **राज्य की गहरी पैठ और नौकरशाही:** ज़बती प्रणाली ने एक विस्तृत नौकरशाही तंत्र (अधिकारी, कानूनगो, पटवारी) का निर्माण किया, जिसने सीधे तौर पर किसानों के साथ संपर्क स्थापित किया और राज्य की पैठ को ग्रामीण स्तर तक गहरा कर दिया।
- **सामाजिक विभेदीकरण में वृद्धि:** नकदी फसल की खेती और बाजार की ताकतों के कारण कुछ धनी किसान वर्ग (खुदकाशत) उभरे, जबकि छोटे किसान (पाईकाशत) और खेतिहर मजदूर अधिक गरीब हो गए। इसने ग्रामीण असमानता को बढ़ाया।
- **भूमि अधिकारों का उदय:** हालांकि भूमि पर मालिकाना हक पूरी तरह स्पष्ट नहीं था, लेकिन राजस्व के नियमित भुगतान से किसानों को एक प्रकार का कब्जा अधिकार (hereditary possession) मिला, जिससे उन्हें बेदखल करना मुश्किल हो गया, जब तक कि वे कर देते रहे।

## निष्कर्ष

संक्षेप में, मुगल राजस्व प्रशासन ने कृषि के व्यावसायीकरण को बढ़ावा देकर और एक केंद्रीकृत नौकरशाही स्थापित करके उत्तर भारत के ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने को महत्वपूर्ण रूप से परिवर्तित किया। हालांकि, इसने ज़मींदारों की स्थिति और ग्रामीण आत्मनिर्भरता जैसे पारंपरिक तत्वों को भी काफी हद तक निरंतर बनाए रखा।

## Q. 8.

(a) अकबर और शाहजहाँ जैसे पूर्ववर्ती शासकों की उदार धार्मिक नीतियों के विपरीत, औरंगज़ेब की रूढ़िवादी और कट्टरपंथी धार्मिक नीति अक्सर मुगल साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण मानी जाती है। हालांकि, यह तर्क दिया जा सकता है कि औरंगज़ेब की धार्मिक नीति केवल व्यक्तिगत धर्मांधता का परिणाम नहीं थी, बल्कि यह 17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में **मुगल साम्राज्य की बदलती हुई राजनीतिक वास्तविकताओं और दबावों का प्रतिबिंब** थी।

बदलती हुई राजनीतिक वास्तविकताएँ

औरंगज़ेब के सत्ता में आने तक मुगल साम्राज्य कई आंतरिक और बाहरी चुनौतियों का सामना कर रहा था, जिसने उसकी नीतियों को आकार दिया:

- **सत्ता संघर्ष और वैधता की समस्या:** औरंगज़ेब ने अपने भाइयों को मारकर और अपने पिता को कैद करके गद्दी हासिल की थी। इस प्रकार, उसकी सत्ता की वैधता पर सवाल उठ सकते थे। सुन्नी उलेमा (धार्मिक विद्वानों) और रूढ़िवादी वर्ग का समर्थन प्राप्त करके, उसने अपनी स्थिति को मजबूत करने और अपने शासन को धार्मिक वैधता प्रदान करने का प्रयास किया।
- **साम्राज्य का वित्तीय और आर्थिक संकट:** 17वीं शताब्दी के अंत तक, विशेष रूप से दक्कन के लंबे और महंगे युद्धों के कारण, साम्राज्य गंभीर वित्तीय संकट में था। **जजिया कर** (जिसे अकबर ने समाप्त कर दिया था) को फिर से लागू करना, धार्मिक रूप से अनुमत आय के एक अतिरिक्त स्रोत के रूप में देखा जा सकता था, बजाय केवल धार्मिक कट्टरता के।
- **दरबारी गुटबाजी का प्रभाव:** मुगल दरबार में विभिन्न गुट (ईरानी, तूरानी, अफगानी, भारतीय मुसलमान) थे। उलेमा गुट बहुत प्रभावशाली था और वह एक सच्चे इस्लामी राज्य की स्थापना के लिए सुल्तान पर दबाव डाल रहा था। औरंगज़ेब ने इस गुट का समर्थन प्राप्त करके अन्य गुटों के प्रभाव को संतुलित करने का प्रयास किया।
- **साम्राज्य का विशाल आकार:** अकबर के समय से साम्राज्य बहुत बड़ा हो चुका था, जिससे केंद्रीकृत नियंत्रण मुश्किल हो रहा था। कठोर और एकीकृत धार्मिक नीति के माध्यम से, औरंगज़ेब शायद साम्राज्य को धार्मिक एकता के सूत्र में बांधने की उम्मीद कर रहा था।
- **स्थानीय विद्रोह और प्रतिरोध:** मराठों, सिखों, और राजपूतों सहित विभिन्न समूहों के विद्रोह और प्रतिरोध बढ़ रहे थे। औरंगज़ेब की नीति इन विद्रोहों को दबाने के लिए एक मजबूत और एकीकृत मुस्लिम पहचान बनाने की प्रतिक्रिया थी।

## नीति का प्रतिबिंब

उपर्युक्त वास्तविकताओं के प्रतिबिंब के रूप में, औरंगज़ेब ने कई कदम उठाए:

- **गैर-मुस्लिमों पर प्रतिबंध:** मंदिरों को तोड़ने के आदेश, होली और दिवाली जैसे त्योहारों पर प्रतिबंध और जजिया कर को फिर से लागू करना।
- **इस्लामीकरण का प्रयास:** शरीयत को सख्ती से लागू करने का प्रयास, दरबार से संगीत और चित्रकला को हटाना, और मुहतसिब (सार्वजनिक नैतिकता अधिकारी) की नियुक्ति।

संक्षेप में, औरंगज़ेब की धार्मिक नीति पूरी तरह से वैचारिक नहीं थी। यह एक अस्थिर और बदलती हुई राजनीतिक-आर्थिक स्थिति में सत्ता को मजबूत करने, राजस्व बढ़ाने और रूढ़िवादी वर्गों का समर्थन प्राप्त करने का एक राजनीतिक उपकरण थी। इन नीतियों के परिणामस्वरूप उसे अल्पकालिक लाभ हुए होंगे, लेकिन अंततः ये साम्राज्य के विघटन के दीर्घकालिक कारणों में से एक बन गईं।

यह तर्क कि "औरंगज़ेब की धार्मिक नीति मुगल साम्राज्य की बदली हुई राजनीतिक वास्तविकताओं का प्रतिबिंब थी," काफी हद तक सही है। उनकी नीति केवल व्यक्तिगत धार्मिक कट्टरता से प्रेरित नहीं थी, बल्कि यह 17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में साम्राज्य के सामने आ रही नई चुनौतियों और राजनीतिक दबावों का एक सुविचारित, यद्यपि त्रुटिपूर्ण, उत्तर थी।

बदली हुई राजनीतिक वास्तविकताओं का प्रतिबिंब

औरंगज़ेब के सत्ता में आने तक मुगल साम्राज्य कई आंतरिक और बाहरी दबावों का सामना कर रहा था। उनकी धार्मिक नीति इन वास्तविकताओं को संबोधित करने का एक प्रयास थी:

### 1. वैधता की तलाश और सुन्नी उलेमा का समर्थन:

- **सत्ता संघर्ष:** औरंगज़ेब ने अपने भाइयों को मारकर और अपने पिता को कैद करके गद्दी हासिल की थी। इस प्रकार सत्ता पर उसका दावा कमजोर था और उसे वैधता की आवश्यकता थी।
- **उलेमा का प्रभाव:** साम्राज्य में सुन्नी मुस्लिम धर्मगुरुओं (उलेमा) का प्रभाव बढ़ रहा था। इन कट्टरपंथी उलेमाओं का समर्थन प्राप्त करने और अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए, औरंगज़ेब ने खुद को एक रूढ़िवादी सुन्नी शासक के रूप में प्रस्तुत किया। "शरीयत" (इस्लामी कानून) को सख्ती से लागू करने का उनका वादा एक राजनीतिक कदम था ताकि इस प्रभावशाली समूह का समर्थन हासिल किया जा सके।

### 2. साम्राज्य का बढ़ता आर्थिक और सैन्य संकट:

- **आर्थिक दबाव:** साम्राज्य का खजाना लगातार युद्धों और विशेष रूप से दक्कन के लंबे अभियानों के कारण खाली हो रहा था। 1679 में गैर-मुसलमानों पर **जजिया कर** को फिर से लागू करना, जिसे अकबर ने समाप्त कर दिया था, एक आर्थिक कदम भी था, जिसका उद्देश्य राज्य के राजस्व को बढ़ाना था।
- **संसाधनों की कमी:** "जागीरदारी संकट" के कारण मनसबदारों के पास जागीरें कम पड़ रही थीं। इन परिस्थितियों में, मुसलमानों को एकजुट करना और उन्हें विशेष रियायतें देना एक राजनीतिक आवश्यकता बन गई थी ताकि अभिजात वर्ग में वफादारी सुनिश्चित की जा सके।

### 3. क्षेत्रीय विद्रोह और प्रतिरोध:

- **मराठा शक्ति का उदय:** शिवाजी के नेतृत्व में मराठा एक दुर्जेय शक्ति के रूप में उभरे, जिन्होंने मुगलों के लिए गंभीर खतरा पैदा किया। राजपूतों के साथ भी संबंध तनावपूर्ण हो गए, विशेषकर

मारवाड़ के मामले में। इन बढ़ती हुई चुनौतियों के बीच, औरंगज़ेब ने साम्राज्य को एक धार्मिक पहचान देकर एकजुट करने का प्रयास किया।

- **हिंदू विरोधी गतिविधियों का परिणाम:** जाटों और सिखों जैसे समूहों ने भी औरंगज़ेब की नीतियों के खिलाफ विद्रोह किया, जो आंशिक रूप से आर्थिक नीतियों और धार्मिक उत्पीड़न से प्रेरित थे। इन विद्रोहों ने औरंगज़ेब को कठोर तरीके अपनाने पर मजबूर किया।

### निष्कर्ष

औरंगज़ेब की धार्मिक नीति उसकी व्यक्तिगत आस्था से प्रभावित थी, इसमें कोई संदेह नहीं है, लेकिन यह मुख्य रूप से 17वीं सदी के अंत में मुगल साम्राज्य की बदलती राजनीतिक वास्तविकताओं - वैधता की आवश्यकता, आर्थिक संकट, और क्षेत्रीय प्रतिरोध - की प्रतिक्रिया थी। उन्होंने राजनीतिक समस्याओं का समाधान धार्मिक आधार पर करने की कोशिश की, जिससे अल्पकालिक लाभ हुआ लेकिन दीर्घकाल में साम्राज्य की नींव कमजोर हो गई।

(b) मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत प्रांतीय स्थापत्यगत शैलियों का उत्कर्ष एक जटिल प्रक्रिया थी, जो मुख्य रूप से शाही संरक्षण, स्थानीय परंपराओं, सांस्कृतिक अंतःक्रिया और प्रांतीय सत्ता संरचनाओं की प्रकृति के प्रकाश में परिभाषित हुई। यह एक केंद्रीकृत साम्राज्य के भीतर क्षेत्रीय पहचानों का एक अनूठा सम्मिश्रण था।

#### 1. संरचनात्मक विविधता

मुगल प्रांतीय स्थापत्य अपनी महान संरचनात्मक विविधता के लिए जाना जाता है, जो स्थानीय जलवायु, सामग्री की उपलब्धता और कारीगरों की विशेषज्ञता के अनुकूल थी।

- **बंगाल शैली:** यहाँ की स्थापत्य शैली में स्थानीय बांस और मिट्टी की झोपड़ियों की संरचनात्मक विशेषताओं को अपनाया गया। प्रमुख विशेषताएँ थीं:
  - **ढलवाँ छतें ("चौचला" या "दोचला"):** अत्यधिक बारिश से बचाव के लिए ढलान वाली छतें बनाई गईं, जो बाद में शाही मुगल वास्तुकला (जैसे फतेहपुर सीकरी में) में भी अपनाई गईं।
  - **टेराकोटा (पकी हुई मिट्टी) का काम:** स्थानीय सामग्री के रूप में ईंटों और टेराकोटा की सजावट का व्यापक उपयोग हुआ (जैसे गौड़ में बारा सोना मस्जिद)।
- **गुजरात शैली:** यहाँ हिंदू और जैन मंदिरों की स्थापत्य कला का मजबूत प्रभाव था।
  - **जटिल नक्काशी और ब्रैकेट:** स्तंभों, मेहराबों और दीवारों पर विस्तृत और जटिल पत्थर की नक्काशी प्रमुख थी।
  - **मेहराबों की शैली:** यहाँ के स्थापत्य में इस्लामी मेहराबों को स्थानीय शैली के साथ मिश्रित किया गया।
- **कश्मीर शैली:** लकड़ी का उपयोग प्रमुख था। मस्जिदों और मकबरों में बहु-स्तरीय ढलान वाली छतें और विशिष्ट चिमनी (बुखारी) डिजाइन देखे गए।

#### 2. सांस्कृतिक अंतःक्रिया (सिंक्रैटिज्म)

मुगल प्रांतीय स्थापत्य एक "सांस्कृतिक अंतःक्रिया" का उत्कृष्ट उदाहरण था, जहाँ इस्लामी स्थापत्य तत्वों का स्थानीय भारतीय परंपराओं के साथ संश्लेषण हुआ।

- इंडो-इस्लामिक संश्लेषण: सल्तनत काल से शुरू हुई यह प्रक्रिया मुगल काल में जारी रही। मस्जिदों और मकबरों में कमल के प्रतीकों, हिंदू शैली के स्तंभों, और नक्काशीदार ब्रैकेटों का उपयोग आम था।
- भाषा का स्थापत्य में परिवर्तन: स्थानीय कारीगरों ने इस्लामी मेहराबों और गुंबदों को अपनी पारंपरिक कलात्मक भाषा के माध्यम से नया रूप दिया। उन्होंने स्थानीय प्रतीकों और सजावटी मोटिफों को मुगल इमारतों में शामिल किया।

### प्रांतीय सत्ता संरचनाओं की प्रकृति

प्रांतीय सत्ता संरचनाओं ने भी स्थापत्य शैली को निर्धारित किया। सम्राट द्वारा नियुक्त सूबेदार और स्थानीय अर्ध-स्वायत्त शासक (जैसे राजपूत राजा) इन इमारतों के संरक्षक थे, और उनकी वास्तुकला उनकी राजनीतिक स्थिति को दर्शाती थी।

- **क्षेत्रीय पहचान का दावा:** अर्ध-स्वायत्त शासकों ने अपनी क्षेत्रीय पहचान और शक्ति को मुखर करने के लिए स्मारकीय संरचनाओं का निर्माण किया, जबकि साथ ही मुगल संप्रभुता को स्वीकार किया। उनकी वास्तुकला ने एक साथ साम्राज्य के प्रति वफादारी और स्थानीय विरासत में गर्व दोनों को प्रदर्शित किया।
- **शाही शैली की नकल:** कुछ मामलों में, प्रांतीय शासकों ने शाही मुगल शैली की नकल करके अपनी शक्ति और मुगल साम्राज्य के साथ अपने जुड़ाव को प्रदर्शित करने की कोशिश की, लेकिन अक्सर स्थानीय सामग्रियों और कारीगरी का उपयोग किया।
- **सत्ता का प्रतीक:** उद्यान, मकबरे, मस्जिद और किले जैसे संरचनाएं केवल कार्यात्मक इमारतें नहीं थीं; वे राजनीतिक बयान, शक्ति के प्रतीक और सांस्कृतिक पुल थे, जिनका उपयोग वफादारी हासिल करने और शक्ति प्रदर्शित करने के लिए किया जाता था।

इस प्रकार, मुगल साम्राज्य के अंतर्गत प्रांतीय स्थापत्य शैलियों का उत्कर्ष एक गतिशील प्रक्रिया थी, जो शाही आदर्शों, स्थानीय परंपराओं और बदलते राजनीतिक परिदृश्य के बीच तालमेल को दर्शाती थी।

(c) 18वीं शताब्दी में मराठा राज्य के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिसने इसे शिवाजी के केंद्रीकृत साम्राज्य से एक ढीले-ढाले "मराठा परिसंघ" (**Maratha Confederacy**) में बदल दिया। इन परिवर्तनों में राजनीतिक, सैन्य और प्रशासनिक कारकों की अहम भूमिका थी।

**स्वरूप में परिवर्तन लाने वाले कारक**

#### 1. राजनीतिक कारक:

- **छत्रपति से पेशवा को सत्ता हस्तांतरण:** 18वीं शताब्दी की शुरुआत में, विशेष रूप से साहूजी महाराज के शासनकाल (1707-1749) के दौरान, वास्तविक शक्ति 'पेशवा' (प्रधानमंत्री) के हाथों में चली गई। पेशवा का पद वंशानुगत हो गया, जिससे छत्रपति केवल एक नाममात्र का शासक रह गया।

- **परिसंघ का उदय:** पेशवाओं, विशेषकर बाजीराव प्रथम ने मराठा शक्ति के तेजी से विस्तार को प्रबंधित करने के लिए प्रमुख मराठा सरदारों (जैसे सिंधिया, होल्कर, गायकवाड़, भोसले) को अर्ध-स्वायत्त क्षेत्र सौंपे। इससे एक परिसंघ का निर्माण हुआ जहाँ ये सरदार अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे।
- **आंतरिक संघर्ष:** विभिन्न मराठा प्रमुखों के बीच सत्ता संघर्ष और प्रतिद्वंद्विता ने केंद्रीय अधिकार को कमजोर कर दिया। प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध (1775-1782) जैसे संघर्षों का मूल कारण भी पेशवा पद के लिए आंतरिक सत्ता संघर्ष था।

## 2. सैन्य कारक:

- **गुरिल्ला युद्ध से पारंपरिक युद्ध की ओर:** शिवाजी के अधीन मराठा सेना गतिशीलता और गुरिल्ला युद्ध (छापामार रणनीति) में निपुण थी। 18वीं शताब्दी में, उन्होंने उत्तर भारत के खुले मैदानों में लड़ने के लिए यूरोपीय शैली की अनुशासित पैदल सेना, तोपखाने और भाड़े के सैनिकों को शामिल करना शुरू किया।
- **पारंपरिक ताकत का हास:** पारंपरिक युद्ध शैली अपनाने से मराठों की गतिशीलता और अनुकूलनशीलता की ताकत कम हो गई। साथ ही, विदेशी भाड़े के सैनिकों पर निर्भरता ने सेना की एकता और वफादारी को कमजोर किया।
- **सैन्य प्रौद्योगिकी में पिछड़ना:** मराठा, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की बेहतर सैन्य प्रौद्योगिकी और संगठनात्मक क्षमता के सामने टिक नहीं पाए।

## 3. प्रशासनिक कारक:

- **केंद्रीकरण की कमी:** शिवाजी की कुशल और केंद्रीकृत अष्ट प्रधान परिषद प्रणाली के विपरीत, 18वीं शताब्दी में शक्ति का विकेंद्रीकरण हुआ। प्रत्येक सरदार अपने क्षेत्र में स्वतंत्र प्रशासन चलाता था।
- **चौथ और सरदेशमुखी का अपर्याप्त प्रबंधन:** 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' राजस्व के महत्वपूर्ण स्रोत थे, लेकिन उनके संग्रह का तरीका अक्सर शोषणकारी था, जिससे स्थानीय आबादी और अन्य राज्यों में मराठों के प्रति शत्रुता पैदा हुई। इन निधियों का प्रभावी ढंग से उपयोग नहीं किया गया।
- **आर्थिक अस्थिरता:** निरंतर युद्धों और अव्यवस्थित राजस्व प्रशासन ने आर्थिक अस्थिरता पैदा की, जिससे सैन्य शक्ति बनाए रखना मुश्किल हो गया।

## उत्थान और पतन पर प्रभाव

इन परिवर्तनों ने मराठा राज्य के उत्थान और पतन दोनों को प्रभावित किया:

- **उत्थान में सहायक:** परिसंघ प्रणाली और पेशवाओं के नेतृत्व में विस्तारवादी नीति ने मराठा साम्राज्य को 18वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में अपने चरम पर पहुँचाया। उन्होंने मुगलों को विस्थापित कर भारत की प्रमुख शक्ति के रूप में खुद को स्थापित किया, दिल्ली तक अपना प्रभाव बढ़ाया।
- **पतन में सहायक:**

- **विखंडन:** परिसंघ की ढीली संरचना ने एकता की कमी पैदा की। पानीपत के तीसरे युद्ध (1761) में मराठों की हार ने इस विखंडन को उजागर कर दिया, क्योंकि विभिन्न प्रमुख एक-दूसरे से पूरी तरह समन्वय नहीं कर पाए।
- **आंतरिक कलह:** आंतरिक सत्ता संघर्षों ने ब्रिटिशों को हस्तक्षेप करने का मौका दिया।
- **सैन्य कमजोरी:** पारंपरिक युद्ध शैली से हटना और आधुनिक सैन्य रणनीति में पूरी तरह महारत हासिल न कर पाना, आंग्ल-मराठा युद्धों में उनकी हार का एक प्रमुख कारण बना।

इस प्रकार, 18वीं शताब्दी में मराठा राज्य के स्वरूप में परिवर्तन, जो राजनीतिक विकेंद्रीकरण, सैन्य रणनीति में बदलाव और प्रशासनिक अस्थिरता से प्रेरित थे, अंततः साम्राज्य के पतन का कारण बने, और 1818 में ब्रिटिशों ने मराठा शक्ति को पूरी तरह समाप्त कर दिया।

PLUTUS IAS